श्रीमद्देवसेनाचार्यविरचितः

लघु नयचक्रम्

अनुवाद - सम्पादन

ब्र. विनोद जैन 'शास्त्री' ब्र. अनिल जैन 'शास्त्री'

श्री वर्णी दिग. जैन गुरुकुल

जबलपुर

प्रकाशक

साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जैन ग्रन्थमाला

श्री वर्णी दिग. जैन गुरुकुल, पिसनहारी मढ़िया, जबलपुर

सम्पादकीय

श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र, पपौरा जी के पुस्तकालय में मुझे माणिकचन्द्र दिग. जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित "नयचक्रादि संग्रह" नामक ग्रंथ उपलब्ध हुआ था। इसी में "लघु नयचक्रम्" श्री देवसेनाचार्य विरचित प्रकाशित हुआ है। लघुकाय यह ग्रंथ मुझे नय की विवेचना विषयक श्रेष्ठ ग्रंथ मालूम पड़ा। पूर्व में मैंने इसका अनुवाद कहीं देखा भी नहीं था। कुछ विद्वानों से इस ग्रंथ के अनुवाद विषय जानकारी प्राप्त करना चाही, यह ही ज्ञात हुआ कि इसका अनुवाद नहीं हुआ है। इस कार्य को करने के लिए मैंने नय-विषयक ग्रंथो का अध्ययन प्रारंभ किया है। तथा इसके फलस्वरूप इस ग्रंथ के लिये कुछ भावार्थ लिखें। इस कार्य के करते समय नय विषयक बहुत से भ्रम निवारित हुए। मुझे उस समय अहसास हुआ कि नय विषयक ग्रंथो को अध्ययन जैन धर्म के अध्येता को सर्वप्रथम करना चाहिये। क्योंकि "नय जिनागम के मूल हैं।" नयों के ज्ञान के बिना पदार्थ के स्वरुप का यथार्थ निर्णय संभव नहीं है तथा तत्त्व निर्णय के बिना ध्यान की सिद्धि नहीं हो सकती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नय ज्ञान की मोक्षमार्ग में अत्यधिक उपयोगिता है।

नय चक्र के कार्य को पूर्ण करने की भावना रखते हुए भी मैं उसे पूर्ण नहीं कर सका। मढ़िया जी गुरूकुल में आकर मैंने ब्र. अनिल जी के साथ पुनः कार्य प्रारंभ किया। और परिमाण स्वरुप कार्य पूर्ण हो गया, आवश्यकतानुसार इस ग्रंथ में कुछ प्रसंगों को नय विषयक ग्रंथों से अति अनिवार्य जानकर संकलित भी किया है।

यह सब कुछ आचार्य श्री विद्यासागर महाराज जी के आर्शीवाद का ही सुफल है। पूर्व में भी हम लोगों ने कुछ ग्रंथों का कार्य किया है। गुरुकृपा बिना कुछ भी संभव नहीं होता है। जिसके पास गुरुकृपा है उसके दुष्कर कार्य भी सुकर हो जाते हैं- आशा है गुरुदेव की कृपा के पात्र हम लोग हमेशा बने रहेंगे। इस कार्य का जन सामान्य तथा विद्वानों तक पहुंचाने के लिए इसका प्रकाशन किया जा रहा है। आशा है इससे सभी लोग लाभान्वित होंगे।

ग्रंथ का प्रतिपाद्य -

इस ग्रंथ में 86 गाथाएँ हैं। मंगलाचरण में वीर प्रभु को नमस्कार कर नय चक्र को कहने की प्रतिज्ञा कर, नय का स्वरूप, नय के द्वारा स्याद्वाद का ज्ञान तथा वस्तु की प्रतिपत्ति भी नय ज्ञान के बिना संभव नहीं है, इत्यादि विवेचना के पश्चात् नयो में नव भेद- द्रव्यार्थिक नय पर्यायार्थिक नय, नैगम नय, संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्र नय, समभिरुढ़नय, शब्दनय एवंभूत नय इन सभी के भेद प्रभेदों का वर्णन किया है।

अन्यप्रकार से द्रव्यार्थिक नय के 10 भेद पर्यायार्थिक नय के 6 भेद तथा उपनय के तीन भेद बतलाकर उनके स्वरूपों का विवेचन किया है। अंत में ग्रंथकार ने व्यवहार को गौण कर, मैं परभाव रहित ज्ञाता दृष्टा स्व संवदेन गम्य हूँ इस प्रकार की भावना कर, स्वचारित्र को उपलब्ध करना चाहिए ऐसा निर्देश कर,नयचक्र की उपयोगिता निर्दिष्ट की है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महा

ग्रंथ की विशेषताऐं -

लघुकाय इस ग्रंथ में नय के अलावा द्रव्य, गुण, पर्याय, प्रमाण का वर्णन बिल्कुल भी नहीं किया गया है। एक मात्र नयों का ही विवेचन इस ग्रंथ में किया गया है ।इस ग्रंथ में नय की उपयोगिता में यह कहा गया है कि -

"जो जन नय दृष्टि से विहीन है उन्हें वस्तु-स्वरूप की उपलब्धि नहीं होती है और वस्तु स्वभाव को नहीं जानने वाले सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते है ?" (गाथा/10)

नय सिद्ध योगी ही आत्मानुभवी होता है -

"जह रससिद्दो वाई हेमं काऊण भुंजये भोगं।
तह णय सिद्दो जोई अप्पा अणुहवउ अणवरयं ॥ (गाथा/77)

इस ग्रंथ में नयों का स्वरुप निर्दिष्ट करने के पश्चात् साधक हो यह स्पष्ट संदेश दिया है कि स्वभाव आराधना के काल में व्यवहार नय को गौण करना चाहिए।

ववहारादो बंधो मोक्खो जह्मा सहावसंजुत्तो।
तह्मा कर तं गउणं सहावमाराहणाकाले ॥ (गाथा/76)

इसप्रकार इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का बारम्बार चिन्तन /मनन अपेक्षित है। आशा है नय जिज्ञासु पाठक इसका पूर्णतः लाभ लेंगे। अंत में ब्र. प्रदीप जैन "पीयूष" के हम लोग अत्यधिक आभारी हैं जिनकी धर्मानुकम्पा से इस ग्रंथ का प्रकाशन डॉ. पं. पन्नालाल जैन ग्रंथमाला की ओर से हो रहा है। इसके साथ हम लोग ब्र. त्रिलोक जी को हृदय से स्मरण करते हैं जिन्होंने हम लोगों के कार्य में समय समय पर आन्तरिक वात्सल्य से अभिभूत होकर, यथा संभव सहयोग प्रदान किया है।

इस ग्रंथ के संपादन में त्रुटियां होना संभव है विज्ञ जन सुधार कर, इस ग्रंथ का लाभ लें।

ब. विनोद जैन
ब. अनिल जैन

श्री देवसेनाचार्य

देवसेन नाम के कई आचार्यों के उल्लेख मिलते हैं। एक देवसेन वे हैं जिन्होंने विक्रम सं. 990 में दर्शन सार नामक ग्रंथ की रचना की थी। आलाप पद्धति, लघु नयचक्र, आराधना सार और तत्त्वसार नामक ग्रंथ भी देव सेन के द्वारा रचित हैं। इन सब ग्रंथों को दर्शन सार के रचयिता देव सेन की कृति माना जाता है। इनका बनाया हुआ एक भाव संग्रह नाम का ग्रंथ है । उसमें वे अपने विषय में इस प्रकार कहते हैं-

सिरिविमलसेण गणहरसिस्सो णामेण देवसेणुत्ति ।
अबुहजणबोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुत्तं ॥

इससे मालूम होता है कि इनके गुरु का नाम श्री विमलसेन गणधर (गणी) था । दर्शनसार नामक ग्रंथ के अंत में वे अपना परिचय देते हुए लिखते हैं :-

पुव्वायरियकयाइं गाहाइं संचिऊ ण एयत्थ ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥49॥
रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए नवए ।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥50॥

अर्थात् पूर्वाचार्यों की रची हुई गाथाओं को एक जगह संचित करके श्रीदेवसेन गणि ने धारा नगरी में निवास करते हुए पार्श्वनाथ के मंदिर में माघ सुदी दशवीं विक्रम संवत् 990 को यह दर्शनसार नामक ग्रंथ रचा। इससे निश्चय हो जाता है कि उनका अस्तित्व काल विक्रम की दशवीं शताब्दि है। अपने अन्य किसी ग्रंथ में उन्होंने ग्रंथ रचना का समय नहीं दिया है।

यद्यपि इनके किसी ग्रंथ में इस विषय का उल्लेख नहीं है कि वे किस संघ के आचार्य थे , परंतु दर्शनसार के पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। कि वे मूलसंघ के आचार्य थे। दर्शनसार में उन्होंने काष्ठासंघ, माथुरसंघ और यापनीयसंघ आदि सभी दिगम्बर संघों की उत्पत्ति बतलाई है और उन्हें मिथ्यात्वी कहा है परंतु मूलसंघ के विषय में कुछ नहीं कहा है। अर्थात् उनके विश्वास के अनुसार यही मूल से चला आया हुआ असली संघ है ।

दर्शनसार की 43 वीं गाथा में लिखा है कि यदि आचार्य पद्मनन्दि (कुन्दकुन्द) सीमन्धर स्वामी द्वारा प्राप्त दिव्यज्ञान के द्वारा बोध न देते तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते। इससे यह भी निश्चय हो जाता है कि वे श्री कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय में थे।

*****

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठ
मंगलाचरण	–	1
नय की परिभाषा, उपयोगितादि	–	1–7
नयों के भेद	–	8–12
उपनयों के भेद	–	13 – 15
द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नयों का स्वरूप	–	15 – 17
द्रव्यार्थिक 10 नयों का स्वरूप	–	17 – 23
पर्यायार्थिक 6 नयों का स्वरूप	–	23 – 27
नैगमादि 7 नयों का स्वरूप	–	27 – 36
सद्भूत व्यवहार नय का स्वरूप	–	36 – 39
असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण एवं 9 भेदों का स्वरूप	–	39 – 45
व्यवहार सर्वथा असत् नहीं	–	45 – 50
उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का स्वरूप व भेद	–	50 – 53
कथंचित् व्यवहार नय की गौणता	–	54
नयसिद्ध योगी ही आत्मानुभवी	–	54 – 55
चारित्र और उसकी प्राप्ति के लिए भावनाएं	–	55 – 58
नयचक्र की रचना का हेतु	–	58
नयचक्र की उपयोगिता	–	58

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

॥ वीतरागाय नमः ॥

श्री देवसेन विरचितं

लघु नयचक्रम्

मंगलाचरण

वीरं विसयविरत्तं विगयमलं विमलणाणसंजुत्तं ।
पणविवि वीरजिणिंदं पच्छा णयलक्खणं वोच्छं ॥1॥

वीरं विषयविरक्तं विगतमलं विमलज्ञानसंयुक्तम् ।
प्रणम्य वीरजिनेन्द्रं पश्चान्नयलक्षणं वक्ष्ये ॥1॥

अर्थ – कर्मों को जीतने से वीर, विषयों से विरक्त, कर्ममल से रहित और निर्मल केवलज्ञान से युक्त महावीर जिनेन्द्र को नमस्कार करके पश्चात् नय का लक्षण कहूँगा।

विशेषार्थ – यह मंगलाचरण स्वरूप गाथा है। रागादि दोषों से रहित तथा निर्मल ज्ञान युक्त वीर प्रभु को नमस्कार कर, नयों का लक्षण कहूंगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा देवसेनाचार्य महाराज (ग्रन्थकर्ता) ने की है।

नय की परिभाषा

जं णाणीण वियप्पं सुयभेयं वत्थुयंससंगहणं ।
तं इह णयं पउत्तं णाणी पुण तेहि णाणेहिं ॥2॥

यो ज्ञानिनां विकल्पः श्रुतभेदो वस्त्वंशसंग्रहणम् ।
स इह नयः प्रोक्तः ज्ञानी पुनस्तैर्ज्ञानैः ॥2॥

अर्थ – श्रुत ज्ञान के आश्रय को लिये हुए ज्ञानी का जो विकल्प वस्तु के अंश को ग्रहण करता है उसे नय कहते है। उस ज्ञान से जो युक्त होता है वह ज्ञानी है।

विशेषातार्थ – इस गाथा के द्वारा ग्रन्थकार ने नय का लक्षण निरूपित किया है। नय श्रुतज्ञान का भेद है। इसलिए श्रुतज्ञान के आधार से ही नय की प्रवृति होती है। श्रुत ज्ञान प्रमाण होने से सकल ग्राही होता है, उसके एक अंश को ग्रहण करने वाला नय है। इसी से नय विकल्प रूप कहा जाता है। नय की विविध अन्य परिभाषायें भी उपलब्ध हैं। प्रतिपक्षी अर्थात् विरोधी धर्मों का निराकरण न करते हुए वस्तु के एक अंश या धर्म को ग्रहण करने वाला ज्ञाता का अभिप्राय नय हैं अथवा नाना स्वभावों से वस्तु को पृथक् करके जो एक स्वभाव में वस्तु को स्थापित करता है, वह नय है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सविधिसागर जी महार

इन परिभाषाओं के पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि प्रत्येक पदार्थ अनन्त धर्मात्मक है। उन सभी धर्मो का विवेचन एक-साथ-एक समय में करना संभव नहीं है। उन धर्मो का क्रम पूर्वक ही निरुपण संभव है अतः विवक्षित किसी एक धर्म का निरुपण करने वाला प्रयोग नय है। इस प्रकार नय के यथार्थ स्वरूप को जानता है - उसे ज्ञानी समझना चाहिये।

नय बोध की अनिवार्यता

जह्मा ण णएण विणा होई णरस्स सियवायपडिवत्ती।
तह्मा सो बोहव्वो एअंतं हंतुकामेण ॥3॥

यस्मान्न नयेन विना भवति नरस्य स्याद्वादप्रतिपत्तिः।
तस्मात्स बोद्धव्य एकान्तं हन्तुकामेन ॥3॥

अर्थ – नय के बिना मनुष्य को स्याद्वाद का बोध नहीं हो सकता। इसलिए जो एकान्त का विरोध करना चाहता है उस को नय जानना चाहिए।

विशेषार्थ – स्यात् अर्थात् कथंचित् या विवक्षित प्रकार से अनेकान्त रूप से वदना, वादकरना, जल्प करना, कहना, प्रतिपादन करना स्याद्वाद है। यथा-पदार्थ कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य है। इस कथन से पदार्थ सर्वथा एक धर्मरूप सिद्ध नहीं होता है। स्यात् शब्द अनेकान्त का द्योतक जानना चाहिए। ग्रन्थकार कहते हैं कि जिसे नय का ज्ञान नहीं है वह स्याद्वाद पद्धति को नहीं समझ सकता है। तथा मिथ्या एकान्त का विरोध करने वाले को सम्यक् प्रकार से नय के स्वरूप जानना चाहिए।

अनेकांत का मूल नय

जह सद्धाणंमाई सम्मत्तं जह तवाइगुणणिलये ।
धाओ वा एयरसं तह णयमलो अणेयंतो ॥4॥

मार्गदर्शक

यथा शुद्धानमादिः सम्यक्त्वं यथा तपादिगुणनिलये ।
धातुर्वा एकरसस्तथा नयमूलोऽनेकान्तः ॥4॥

अर्थ – जैसे शास्त्रों का मूल अकारादि वर्ण है, तप आदि गुणों के भण्डार साधु में सम्यक्त्व मूल है, धातुओं में मूल पारा है, वैसे ही अनेकान्त का मूल नय है।

विशेषार्थ – जिस प्रकार शास्त्रों का मूल अकारादि वर्ण है। क्योंकि शास्त्रों की रचना अकारादि वर्णो के ही आधार पर ही होती है, तप आदि गुणों के भण्डार साधु में सम्यकत्व है क्योंकि सम्यकत्व के बिना तप आदि गुणों की कोई उपयोगिता नहीं है। धातुओं में पारा मुख्य है क्योंकि इसी के आधार पर धातुओं का शोधन संभव है इसके बिना नहीं। ठीक इसी प्रकार अनेकान्त का मूल नय जानना चाहिए। यदि नय का समीचीन बोध नहीं होगा तो वस्तु स्वरुप का निर्णय करना अशक्य होगा।

एकान्त से वस्तु सिद्धि नहीं

तच्चं विस्सवियप्पं एयवियप्पेण साहए जो हु ।
तस्स ण सिज्झइ वत्थु किह एयंतं पसोहेदि ॥5॥

तत्त्वं विश्वविकल्पं एकविकल्पेन साधयेद्यो हि ।
तस्य न सिद्धयति वस्तु कथमेकान्तं प्रसाधयेत् ॥5॥

अर्थ - तत्त्व तो नाना विकल्प रुप है उसे जो एक विकल्प के द्वारा सिद्ध करता है उसको वस्तु की सिद्धि नहीं होती। तब वह कैसे एकांत का साधन कर सकता है।

विशेषार्थ - तत्त्व नाना धर्मात्मक है अर्थात् युगपत् उसमें अनेक धर्म पाये जाते है। जो धर्म है वे ही विकल्प कहे जाते हैं। इसलिए गाथा में यह कहा गया है कि तत्त्व नाना विकल्प रूप हैं नाना धर्मात्मक होने के कारण जो वस्तु को एक विकल्प अथवा एक धर्म रूप सिद्ध करता है उसे वस्तु के स्वरुप की सिद्धि किसी प्रकार नहीं हो सकती है। नय को एकान्त भी कहा जाता है क्योंकि किसी विवक्षित धर्म की मुख्यतः से कथन करता है। जो नाना धर्मात्मक पदार्थ को स्वीकार नहीं करता है, वह एकान्त रुप सम्यक्नय का भी साधन नहीं कर सकता।

द्रव्य ज्ञान में नय की उपयोगिता

धम्मविहीणो सोक्खं तह्णाछेयं जलेण जह रहिदो ।
तह इह वंछइ मूढो णयरहिओ दव्वणिच्छित्ती ॥6॥

धर्मविहीनः सौख्यं तृष्णाच्छेदं जलेन यथा रहितः ।
तथेह वाञ्छति मूढो नयरहितो द्रव्यनिश्चितिम् ॥6॥

अर्थ – जिस प्रकार कोई तृषातुर मूढ़ जल विना तृप्ति तथा धर्म विना सुख चाहता है। उसी प्रकार नय ज्ञान के विना द्रव्य के स्वरूप का निश्चय कोई अज्ञानी चाहता है।

विशेषार्थ – जिस प्रकार कोई मूर्ख धर्म बिना सुख की कामना, जल के बिना तृषा निवृति चाहता है, उसी प्रकार नय ज्ञान के बिना द्रव्य के स्वरूप का निर्णय करने वाला मूढ़ समझना चाहिए। द्रव्य के स्वरुप का निर्णय नय ज्ञान के बिना किसी भी प्रकार से संभव नहीं है।

द्रव्य के निर्णय विना ध्यान नहीं

जह ण विभुंजइ रज्जं राओ गिहभेयणेण परिहीणो।
तह झादा णायव्वो दवियणिछित्तीहिं परिहीणो ॥7॥

यथा न विभुनक्ति राज्यं राजा गृहभेदनेन परिहीणः।
तथा ध्याता ज्ञातव्यो द्रव्यनिश्चितिभिः परिहीणः ॥7॥

अर्थ – जिस प्रकार राजनीति को नहीं जानने वाला राजा, राज्य वैभव का भोग नहीं कर सकता है। ठीक उसी प्रकार द्रव्य के यथार्थ बोध से विहीन ध्याता ध्यान की प्राप्ति नहीं कर सकता है।

विशेषार्थ – राजा राज्य के वैभव का भोग राजनीति के ज्ञान के बिना नहीं कर सकता है, क्योंकि राज्य संचालन ज्ञान केआधार पर वह राज्य स्थिति एवं प्रजा की व्यवस्था इत्यादि का समीचीन निर्णय करने में समर्थ होता हैं। ठीक इसी प्रकार सम्यक् ध्यान का इच्छुक यदि द्रव्य के यथार्थ बोध से रहित होगा तो ध्यान करने में समर्थ नहीं हो सकेगा। अतः ध्याता के लिए भी पदार्थ के स्वरूप का यथार्थ बोध होना आवश्यक है।

वस्तु स्वरूप के ज्ञान से ध्यान सिद्धि

बुज्झहता जिणवयणं पच्छा णिजकज्जसंजुआ होह।
अहवा तंदुलरहियं पलालसंधूणणं सव्वं ॥8॥

बुध्यन्तु जिनवचनं पश्चान्निजकार्यसंयुता भवत ।
अथवा तंदुलरहितं पलालसन्धूननं सर्वम् ॥8॥

अर्थ – भगवान् जिनेन्द्र के वचनों को जान कर पश्चात् निज कार्य में संयुक्त होना चाहिए। अन्यथा किया गया कार्य चांवल रहित पलाल (भूसा) के ग्रहण के तुल्य है।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेषार्थ – ध्यान इच्छुक भव्य जीव को सर्वप्रथम भगवान जिनेन्द्र के वचनों के आधार पर पदार्थों के स्वरूप का समीचीन निर्णय करना चाहिए। पश्चात् ध्यान चिन्तवन आदि में युक्त होना चाहिए। अन्यथा चावल की प्राप्ति के बिना पलाल (भूसा) के ग्रहण के तुल्य उसका प्रयास समझना चाहिए। तत्त्व निर्णय के बिना मोक्ष मार्ग में प्रयाण निरर्थक है।

एकान्त और अनेकान्त नय

एअंतो एअणयो होइ अणेयंतमस्स सम्मूहो ।
तं खलु णाणवियप्पं सम्मं मिच्छं च णायव्वं ॥9॥

एकान्त एकनयो भवति अनेकान्तोऽस्य समूहः ।
स खलु ज्ञानविकल्पः सम्यङ्मिथ्या च ज्ञातव्यः ॥9॥

अर्थ – एक नय को एकान्त कहते हैं और उसके समूह को अनेकान्त कहते हैं। यह ज्ञान का भेद हैं जो सम्यक् और मिथ्या दो रूप होता है।

विशेषार्थ – नय को एकान्त कहा जाता है क्योंकि वस्तु में विद्यमान अनेक धर्मो में से किसी एक धर्म की मुख्यतः से वह कथन करता है तथा एक धर्म का कथन करने वाला होने के एकान्त कहा जाता है। नयों के समूह को अनेकान्त जानना चाहिए। नय श्रुत ज्ञान का ही भेद है। यह सम्यक् और मिथ्या के भेद से द्विधारुप समझना चाहिए। जो वस्तु में विद्यमान परस्पर विरोधी धर्मो का विरोध नहीं करते हुए, सापेक्ष रुप से कथन करता है वह सम्यक् नय या सुनय समझना चाहिए। जो वस्तु में विद्यमान अनेक धर्मो को अस्वीकार कर, मात्र एक रुप वस्तु को स्वीकार करता है, उसे दुर्नय या मिथ्या नय समझना चाहिए।

नयदृष्टि विना मिथ्यादृष्टि

जे णयदिठ्ठिविहीणा तेसिं ण हु वत्थुरूवउवलद्धि।
वत्थुसहावविहूणा सम्माइठ्ठी कहं हुंति ॥10॥

ये नयदृष्टिविहीनास्तेषां न खलु वस्तुरूपोपलब्धिः।
वस्तुस्वभावविहीनाः सम्यग्दृष्टयः कथं भवन्ति ॥10॥

अर्थ – जो नयदुष्टि से विहीन है उन्हें वस्तु के स्वरुप का ज्ञान नहीं हो सकता और वस्तु के स्वरुप को न जाने वाले सम्यग्दुष्टि कैसे हो सकते है ?

विशेषार्थ – जिन जीवों को नय के स्वरुप का समीचीन बोध नहीं हैं उन्हें वस्तु के स्वरुप का बोध नहीं हो सकता हैं। और जिन्हें वस्तु के स्वरुप का सम्यक् बोध नहीं है ।वे सम्यग्दुष्टि किस प्रकार से हो सकते है अर्थात् वे सम्यग्दुष्टि नहीं होते हैं।

मूल नयों के भेद

दो चेव मूलिमणया भणिया दव्वत्थपज्जयत्थगया ।
अण्णं असंखसंखा ते तब्भेया मुणेयव्वा ॥11॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

द्वौ चैव मूलनयौ भणितौ द्रव्यार्थपर्यायार्थगतौ ।
अन्येऽसंख्यसंख्यास्ते तद्भेदा ज्ञातव्याः ॥11॥

अर्थ - द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो ही मूल नय कहे गये है। अन्य असंख्यात संख्या को लिये हुए उन दोनों के ही भेद जानने चाहिए।

विशेषार्थ - प्रत्येक वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक है। द्रव्य को विषय करने वाला द्रव्यार्थिक नय कहलाता है और पर्याय को विषय करने वाला है पर्यायार्थिक नय कहलाता है। इन्हीं दोनों मूल नयों में शेष सब नयों का अन्तर्भाव हो जाता है। जितने भी वचन मार्ग हैं, उतने ही नय है अतः नयों की संख्या असंख्यात है। वे असंख्यात नय द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों के ही भेद है क्योंकि उन सबका विषय या तो द्रव्य होता है या पर्याय।

अन्य प्रकार से नयों के भेद

नैगम संगह ववहार तहय रिउसुत्त सद्द अभिरूढा ।
एवंभूयो णवविह णयावि तह उवणया तिण्णि ॥12॥

नैगमः संग्रहः व्यवहारस्तथा चर्जुसूत्रः शब्दः समभिरूढः ।
एवंभूतो नवविधा नया अपि तथोपनयास्त्रयः ॥12॥

अर्थ - नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरुढ़ और एवंभूत (इन सात नयों में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक को मिलाने से) नौ नय हैं तथा तीन उपनय है।

विशेषार्थ – इस गाथा में ग्रन्थकार ने नय- उपनयों के भेदों का नामोल्लेख किया है। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ एवंभूत, द्रव्यार्थिक, तथा पर्यायार्थिक इस प्रकार ये नव नय जानना चाहिए तथा उनका स्वरूप इस प्रकार से है।

नैगम नय :

अनिष्पन्न अर्थ में संकल्पमात्र को ग्रहण करने वाला नय नैगम है। यथा हाथ में फरसा लेकर जाते हुए किसी पुरुष को देखकर कोई अन्य पुरुष पूछता है - आप किस काम के लिये जा रहे हैं ? वह कहता है - प्रस्थ लेने के लिये जा रहा हूँ। यद्यपि उस समय वह प्रस्थ पर्याय सन्निहित नहीं है, तथापि प्रस्थ बनाने के संकल्प मात्र से उसमें प्रस्थ व्यवहार किया गया। यह सब नैगम नय का विषय है।

संग्रह नय :

जो नय अभेद रूप से वस्तु समूह को विषय करता है वह संग्रह नय है। भेद सहित सब पर्यायों को अपनी जाति के अविरोध द्वारा एक मानकर सामान्य से सब को ग्रहण करने वाला नय संग्रह नय है। यथा - सत् , द्रव्य और घट आदि। 'सत्' कहने पर सत् इस प्रकार के वचन और विज्ञान की अनुवृत्ति रूप लिंग से अनुमित सत्ता के आधारभूत सब पदार्थों का सामान्य रूप से संग्रह हो जाता है।'द्रव्य' ऐसा कहने पर भी 'उन पर्यायों को द्रवता है, प्राप्त होता है' इस प्रकार इस व्युत्पत्ति से युक्त जीव, अजीव और उनके सब भेद-प्रभेदों का संग्रह हो जाता है।

व्यवहार नय :

संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थों का विधिपूर्वक अवहरण अर्थात् भेद करना व्यवहारनय है। सर्व संग्रह नय के द्वारा जो वस्तु ग्रहण की गई है, वह अपने उत्तर भेदों के विना व्यवहार कराने में असमर्थ है, इस लिये व्यवहार नय का आश्रय लिया जाता है। जैसे - संग्रह नय का विषय जो द्रव्य है, वह जीव अजीव की अपेक्षा किये बिना व्यवहार कराने में असमर्थ है, इसलिये जीव द्रव्य है और अजीव द्रव्य है, इसप्रकार के व्यवहार का आश्रय लिया जाता है। जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य भी जब तक संग्रह नय के विषय रहते हैं तब तक वे व्यवहार कराने में असमर्थ हैं इसलिये व्यवहार से जीव द्रव्य के देव नारकी आदि रूप और अजीव द्रव्य के घटादि रूप भेदों का आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार इस नय की प्रवृत्ति वहाँ तक होती है, जहाँ तक वस्तु में फिर कोई विभाग करना सम्भव नहीं रहता।

ऋजुसूत्र नय :

ऋजुसूत्र नय अतीत और अनागत तीनों कालों के विषयों को ग्रहण न करके वर्तमान काल के विषयभूत पदार्थों को ग्रहण करता है, क्योंकि अतीत के विनष्ट और अनागत के अनुत्पन्न होने से उनमें व्यवहार नहीं हो सकता। वह वर्तमान काल समय मात्र है और उसके विषयभूत पर्यायमात्र को विषय करनेवाला ऋजुसूत्र नय है।

ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा जिस समय प्रस्थ से धान्य मापे जाते हैं, उसी समय वह प्रस्थ है।

शब्द नय :

'शपति' अर्थात् जो पदार्थ को बुलाता है अर्थात् पदार्थ को कहता है या

उसका निश्चय कराता है। वह शब्दनय है यह शब्दनय लिंग, संख्या, काल, कारक, पुरुष और उपग्रह के व्यभिचार को दूर करता है। पुल्लिंग के स्थान में स्त्रीलिंग का और स्त्रीलिंग के स्थान में पुल्लिंग का कथन करना आदि लिंग-व्यभिचार है। जैसे 'तारका स्वातिः' स्वाति नक्षत्र तारका है। यहां पर तारका शब्द स्त्रीलिंग और स्वाति शब्द पुल्लिंग है अतः स्त्री लिंग शब्द के स्थान पर पुल्लिंग का कथन करने से लिंग व्यभिचार है अर्थात् तारका शब्द स्त्रीलिंग है उसके साथ में पुल्लिंग स्वाति शब्द का प्रयोग किया गया है जो व्याकरण अनुसार ठीक नहीं है। एकवचन आदि के स्थान पर द्विवचन आदि का कथन करना संख्या-व्यभिचार है। जैसे 'नक्षत्रं पुनर्वसू' नक्षत्र है। यहां पर नक्षत्र शब्द एकवचनान्त और पुनर्वसू शब्द द्विवचनान्त है, इसलिये एकवचन के साथ में द्विवचन का कथन करने से संख्या व्यभिचार है। भूत आदि काल के स्थान में भविष्यत् आदि काल का कथन करना काल व्यभिचार है। जैसे - 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता' जिसने समस्त विश्व को देख लिया है ऐसा इसको पुत्र होगा। यहाँ पर 'विश्वदृश्वा' शब्द भूत कालीन है और 'जनिता' यह भविष्यत्कालीन है। अतः भविष्य अर्थ के विषय में 'भूत कालीन' प्रयोग करना काल व्यभिचार है। एक कारक के स्थान पर दूसरे कारक के प्रयोग करने को साधन व्यभिचार कहते हैं। उत्तमपुरुष के स्थान पर मध्यमपुरुष और मध्यमपुरुष के स्थान पर उत्तमपुरुष आदि के प्रयोग करने को पुरुष व्यभिचार कहते है।

इस प्रकार जितने भी लिंग आदि व्यभिचार है वे सभी अयुक्त है, क्योंकि अन्य अर्थ का अन्य अर्थ के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। इसलिये जैसा लिंग हो, जैसी संख्या हो और साधन हो उसी के अनुसार शब्दों का कथन करना उचित है।

'परस्परेणाभिरूढाः समभिरूढाः।' परस्पर में अभिरूढ शब्दों को ग्रहण करने वाला नय समभिरूढ नय कहलाता है। इस नय के विषय में शब्द भेद रहने पर भी अर्थ भेद नहीं है, जैसे शक्र , इन्द्र और पुरंदर ये तीनों ही शब्द देवराज के पर्यायवाची होने से देवराज में अभिरूढ है।

एवंभूत नय –

जिस शब्द का जिस क्रिया रूप अर्थ है तद्रूप किया से परिणत समय में ही उस शब्द का प्रयोग करना युक्त है , अन्य समय में नहीं, ऐसा जिस नय का अभिप्राय है वह एवंभूत नय है। जैसे - पूजा करते हुये मनुष्य को ही पुजारी कहना।

सद्भूत असद्भूत और उपचरित ये तीन उपनय के भेद जानना चाहिए। आचार्य अकलंक देव ने अष्टशती नामक ग्रथ में नैगम संग्रह आदि को नय और उनकी शाखा प्रशाखाओं भेद-प्रभेदों को उपनय कहा है। तथा आलाप पद्धति में जो नयों के समीपवर्ती हो उन्हें उपनय कहा गया है।

द्रव्यार्थिकादि नयोंके भेद

दव्वत्थं दहभेयं छब्भेयं पज्जयत्थियं णेयं ।
तिविहं च णेगमं तह दुविहं पुण संगहं तत्थ ॥13॥
ववहारं रिउसुत्तं दुवियप्पं सेसमाहु एक्केक्का ।
उत्ता इह णयभेया उपणयभेयावि पभणामो ॥14॥

द्रव्यार्थिको दशभेदः षड्भेदः पर्यायार्थिको ज्ञेयः ।
त्रिविधश्च नैगमस्तथा द्विविधः पुनः संग्रहस्तत्र ॥13॥

व्यवहार्जुसूत्रौ द्विविकल्पौ शेषा हि एकैके ।
उक्ता नव नयभेदा उपनयभेदानपि प्रभणामः ॥14॥

अर्थ - द्रव्यार्थिक नय के दस , पर्यायार्थिक नय के छह - नैगम नय के तीन, संग्रह नय , व्यवहार और ऋजुसूत्र नय के दो-दो तथा शेष शब्द, समभिरुढ और एवंभूत नय एक - एक रूप ही हैं। इस प्रकार नय के भेद कहे गये। उपनय के भेद आगे कहते हैं।

विशेषार्थ - पूर्व की गाथाओं में नैगमादि नयों के जो 9 भेद कहे गये हैं , उनके प्रभेदो का कथन इस गाथा में किया गया है। द्रव्यार्थिक नय के दस, पर्यायार्थिक नय के छह, नैगम के तीन, संग्रह , व्यवहार और ऋजुसूत्र नय के दो-दो भेद, शेष शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत नय एक-एक रूप ही जानना चाहिए। इस प्रकार समुदित रुप से नयों के कुल 28 प्रभेद जानना चाहिए।

उपनयों के भेद- प्रभेद

सब्भूयमसब्भूयं उवयरियं चेव दुविह सब्भूयं ।
तिविहं पि असब्भूयं उवयरियं जाण तिविहं पि ॥15॥

सद्भूतमसद्भूतमुपचरितं चैव द्विविधं सद्भूतं ।
त्रिविधमप्यसद्भूतमपचरितंजानीहि त्रिविधमपि॥15॥

अर्थ - उपनय तीन हैं- सद्भूत, असद्भूत और उपचरित। सद्भूत नय के दो भेद हैं, असद्भूत नय के तीन भेद हैं और उपचरित के भी तीन भेद हैं।

विशेषार्थ - नयों के प्रभेदों का कथन करने के पश्चात् उपनयों के प्रभेदों का कथन इस कारिका में किया गया है। प्रथमतः उपनय तीन भेद रूप

है सद्भूत, असद्भूत और उपचरित। पश्चात् सद्भूत के दो-भेद, असद्भूत के तीन, और उपचरित के भी तीन भेद जानना चाहिए। इस प्रकार उपनयों के समुदित 8 प्रभेद जानना चाहिए। जिनका विवेचन आगे किया जायेगा।

नय उपनयों के विषयभूत अर्थ

दव्वत्थिए य दव्वं पज्जायं पज्जयत्थिए विसयं।
सब्भूयासब्भूए उवयरिए च दुणवतियत्था ॥16॥

द्रव्यार्थिके च द्रव्यं पर्यायः पर्यायार्थिके विषयः।
सद्भूतासद्भूते उपचरिते च द्विनवत्रिकार्थाः ॥16॥

अर्थ - द्रव्यार्थिक नयों का विषय द्रव्य है और पर्यायार्थिक नयों का विषय पर्याय है। सद्भूत व्यवहारनय के अर्थ दो हैं, असद्भूत व्यवहार नय के अर्थ नौ है और उपचरितनय के अर्थ तीन है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी

विशेषार्थ - कौन - नय किस द्रव्य को विषय करता है अथवा कितने प्रकार के अर्थो को ग्रहण करता है इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया कि द्रव्यार्थिक नय मात्र द्रव्य को विषय बनाता है। पर्यायार्थिक नय पर्याय को विषय बनाता है। सद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार के अर्थो को विषय बनाता है। असद्भूत व्यवहार नय नव प्रकार के अर्थो को विषय बनाता है और उपचरित नय के तीन प्रकार के अर्थों को विषय करता है - अर्थात् सद्भूत व्यवहार नय के दो भेद है शुद्ध सद्भूत तथा अशुद्ध सद्भूत। असद्भूत व्यवहार नय नौ प्रकार का है - विजातीय द्रव्य में विजातीय द्रव्य का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय, विजातीय गुण में विजातीय गुण का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय, स्वजातीय पर्याय में

स्वजातीय पर्याय का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय, स्वजातीय विजातीय द्रव्य में स्वजाति विजातिय गुण का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय, स्वजातीय द्रव्य में स्वजातीय विभाव पर्याय का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय, स्वजातीय गुण में स्वजातीय द्रव्य का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय, स्वजातीय गुण में स्वजातीय पर्याय का अरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय, स्वजातीय विभाव पर्याय में स्वजातीय द्रव्य का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय, स्वजातीय पर्याय में स्वजातीय गुण का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय तथा उपचरित असद्भूत व्यवहार नय तीन प्रकार का है। स्वजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय, विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय, स्वजातीय विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय। इन सभी के स्वरूपों का स्पष्टीकरण आगे की गाथाओं में किया गया है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी

द्रव्यार्थिक एवं पर्यार्थिक नयों का स्वरूप

पज्जय गउणं किच्चा दव्वं पिय जोहु गिह्णए लोए।
सो दव्वत्थो भणिओ विवरीओ पज्जयत्थो दु ॥17॥

पर्यायं गौण कृत्वा द्रव्यमपि च यो हि गृह्णाति लोके
स द्रव्यार्थो भंणितः विपरीतः पर्यायार्थस्तु ॥17॥

अर्थ – जो पर्याय को गौण करके द्रव्य को ग्रहण करता है उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं और जो द्रव्य को गौण करके पर्याय को ग्रहण करता है उस पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

विशेषार्थ – प्रत्येक वस्तु नित्य अनित्य आदि अनेक विरोधी अंगो

का पिण्ड हैं । वस्तु के नित्य अंग गुण कहलाते है और अनित्य अंग को पर्याय कहते है। गुणों तथा पर्यायों के प्रदेशात्मक अधिष्ठान का नाम द्रव्य है । द्रव्य तो द्रव्य है ही द्रव्य के प्रदेश उसका क्षेत्र हैं, उसकी द्रव्य की पर्याय उसका काल है और उसके गुण उसका भाव है ये चारों वस्तु के स्वचतुष्टय कहलाते हैं । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में चारों ही सामान्य तथा विशेष के रुप में देखे जा सकते है जैसे कि द्रव्य की अपेक्षा देखने पर कोई एक व्यक्तिगत द्रव्य तो विशेष है और ऐसे-ऐसे विशेष द्रव्यों में अनुगत एक जाति सामान्य है । क्षेत्र की अपेक्षा देखने पर वस्तु का कोई एक प्रदेश तो विशेष है और उसके अनेक प्रदेशों में अनुगत एक अखंड संस्थान सामान्य है; इसी प्रकार काल की अपेक्षा देखने पर वस्तु एक समय स्थायी कोई एक पर्याय तो विशेष है और ऐसी-ऐसी अनेक पर्यायों में अनुगत वस्तु की त्रिकाल सत्ता सामान्य है । भाव की अपेक्षा देखने पर वस्तु का कोई एक गुण तो विशेष है और ऐसे -ऐसे अनेक गुणों का पिण्ड कोई एक अखण्ड भाव सामान्य है अथवा किसी एक गुण का कोई एक अविभाग प्रतिच्छेद तो विशेष है और अनेक अविभागी प्रतिच्छेदों में अनुगत वह अखण्ड गुण सामान्य है । सामान्य चतुष्टय स्वरूप तत्त्व सामान्य तत्त्व कहलाता है और विशेष चतुष्टय स्वरूप तत्त्व उसका विशेष समझा जाता है । सामान्य चतुष्टयात्मक तत्त्व की सत्ता को स्वीकार करके विशेष तत्त्व की सत्ता को गौण करना द्रव्यार्थिक नय है और विशेष तत्त्व की सत्ता को स्वीकार करके सामान्य तत्त्व की सत्ता को गौण करना पर्यायार्थिक नय कहलाता है । यथा जब द्रव्यार्थिक दुष्टि से देखते है तो नारक, तिर्यच, मनुष्य, देव आदि पर्याय को गौण करके मात्र एक जीव सामान्य के ही दर्शन होते है । और जब द्रव्यार्थिक दुष्टि को गौणकर के पर्यायर्थिक दुष्टि से द्रव्य का

अवलोकन करते है तब जीव द्रव्य में व्यवस्थित नारक, तिर्यच, मनुष्य, देव आदि पर्यायों के पृथक्-पृथक् दर्शन होते है।

द्रव्यार्थिक नयों के 10 भेद -

कर्मोपधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

कम्माणं मज्झगयं जीवं जो गहइ सिद्धसंकासं ।
भण्णइ सो सुद्धणओ खलु कम्मोवाहिणिरवेक्खो ॥18॥

कर्मणां मध्यगतं जीवं यो गृह्णाति सिद्धसंकाशम्।
भण्यते स शुद्धनयः खलु कर्मोपाधिनिरपेक्षः ॥18॥

अर्थ - जो कर्मों के मध्य में स्थित अर्थात् कर्मों से लिप्त जीव को सिद्धों के समान शुद्ध ग्रहण करता है उसे कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेषार्थ - कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कर्मो से युक्त संसारी जीव को सिद्ध समान शुद्ध ग्रहण करता है। वह जीव के साथ जो कर्म, नोकर्म, आदि का सम्बन्ध है उसे गौण कर मात्र मुक्त जीववत् देखता है। यह नय कर्म-संयोग से उत्पन्न अशुद्धता को गौण कर, कर्म-संयोग से रहित सिद्ध परमेष्ठी सदृश प्राणी मात्र को देखने का दृष्टिकोण प्रदान करता है। औदयिक भाव कृत अशुद्धता को छोड़कर, क्षायिक भाव रूप शुद्धता का ग्रहण करना इस नय का प्रयोजन है।

उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

उप्पादवयं गोणं किच्चा जो गहइ केवला सत्ता ।
भण्णइ सो सुद्धणओ इह सत्तागाहओ समए ॥19॥

उत्पादव्ययं गौणं कृत्वा यो गृह्णाति केवलां सत्ताम्।
भण्यते स शुद्धनयः इह सत्ताग्राहकः समये ॥19॥

अर्थ – उत्पाद और व्यय को गौण करके जो केवल सत्ता को ग्रहण करता है उसे आगम में सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

विशेषार्थ – सत् द्रव्य का लक्षण उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्यात्मक है। उसमें से उत्पाद व्यय को गौण कर, सत्ता या ध्रुवत्व मात्र को जो नय ग्रहण करता है- उसे उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते है। यथा स्वर्ण कड़ा, कुण्डल आदि पर्याय रूप परिमणनें पर भी स्वर्ण पने से किसी भी पर्याय में च्युत नहीं होता है।

यह नय उत्पाद व्यय को मुख्य रूप से ग्रहण नहीं करता इसलिये ये उत्पाद व्यय निरपेक्ष है। केवल सत्ता की नित्यता को ग्रहण करने के कारण सत्ता ग्राहक है। निर्विकल्प ग्रहण होने से शुद्ध है। और सामान्य द्रव्य को विषय करने के कारण द्रव्यार्थिक है अतः उत्पाद - व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्यिक नय कहता है। उत्पत्ति व विनाश वस्तु में होते हुए वस्तु का सामान्य स्वभाव कभी भी उत्पत्ति विनाश रूप नहीं होता है। वह त्रिकाली ध्रुव है। इस प्रकार परिवर्तनशील वस्तु में भी उसकी नित्य सत्ता को ग्रहण करना, इस नय का मुख्य प्रयोजन है।

भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनय

गुणगुणियाइचउक्के अत्थे जो णो करेइ खलु भेयं।
सुद्धो सो दव्वत्थो भेदवियप्पेण णिरवेक्खो ॥20॥

गुणगुण्यादिचतुष्केर्थे यो न करोति खलु भेदम् ।
शुद्धः स द्रव्यार्थो भेदविकल्पेन निरपेक्षः ॥20॥

अर्थ – गुण - गुणी आदि चतुष्करूप अर्थ में जो नय भेद नहीं करता है, वह भेद विकल्प निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी म

विशेषार्थ – जो गुण पर्याय वाला है वह द्रव्य है। ऐसा द्रव्य का लक्षण किया गया है, इस लक्षण से गुण और पर्यायें दो कोई स्वतत्र पदार्थ है और द्रव्य नाम का तीसरा कोई स्वतंत्र पदार्थ है, ऐसा प्रतिभासित होता है किन्तु ये तीनों कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है अपितु एक ही है। इनमें कोई प्रदेश भेद नहीं पाया जाता है। गुण-पर्याय से, पर्याय गुण से, द्रव्य-गुण -पर्याय से अभेद है, अभिन्न हैं। यह नय - भेद विवक्षा को गौण करके,शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा गुण -पर्याय स्वभाव का द्रव्य से अभेद है , इस प्रकार ग्रहण करता है।

कर्मोपधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

भावेसु राययादी सव्वे जीवंमि जो दु जंपेदि ।
सोहु असुद्धो उत्तो कम्माणोवाहिसावेक्खो ॥21॥

भावान् च रागादीन् सर्वेषु जीवेषु यस्तु जल्पति ।
स खलु अशुद्ध उक्तः कर्मणामुपाधिसापेक्षः ॥21॥

अर्थ – जो सब रागादिभावों को जीव का कहता है या रागादिभावों को जीव कहता है वह कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

विशेषार्थ – राग, द्वेष आदि भाव जीव में ही होते है किंन्तु कर्मजन्य है, क्योंकि शुद्ध जीवों में इन भावों का सर्वथा अभाव है। इन भावों को जीव

कहना कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। कर्म की उपाधि की इसमें अपेक्षा है इसलिये यह कर्मोपाधि सापेक्ष है और अशुद्ध द्रव्य को विषय करने से इसका नाम अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

इस नय का मुख्य प्रयोजन यह है कि सांख्य मत के द्वारा जो यह माना गया है कि जीव सदा शिव है, उस कल्पना का निराकरण कर, वर्तमान की अशुद्ध अवस्था से छूट कर, शुद्ध अवस्था की प्राप्ति के लिए प्रयत्न रत रहना ही जीव का पुरूषार्थ है।

मार्गदर्शक :- आ

उत्पाद-व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

उप्पादवयविमिस्सा सत्ता गहिऊग भणइ तिदयत्तं।
दव्वस्स एयसमये जो हु असुद्धो हवे विदिओ ॥22॥

उत्पादव्ययविमिश्रां सत्तां गृहीत्वा भणति त्रितयत्वम्।
द्रव्यस्यैकसमये यो ह्यशुद्धो भवेद्द्वितीयः ॥22॥

अर्थ - जो नय उत्पाद व्यय के साथ मिली हुई सत्ता को ग्रहण करके द्रव्य को एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रुप कहता है वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

विशेषार्थ - वस्तु नित्य और अनित्य धर्म रूप उभयात्मक है अर्थात् उत्पाद-व्यय ध्रौव्य से युक्त त्रयात्मक हैं इसीलिए वस्तु को उत्पाद व्यय सापेक्ष मानना उत्पाद-व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का स्वरूप जानना चाहिये। यह नय एक ही समय में उत्पाद -व्यय धौव्यात्मक द्रव्य है, ऐसा स्वीकार करता है।

भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

भेदे सदि संबंधं गुणगुणियाईण कुणइ जो दव्वे ।
सो वि असुद्धो दिठ्ठो सहिओ सो भेदकप्पेण ॥23॥

भेदे सति सम्बन्धं गुणगुण्यादीनां करोति यो द्रव्ये ।
सोप्यशुद्धो दृष्टः सहितः स भेदकल्पनया ॥23॥

अर्थ – जो नय द्रव्य में गुण-गुणी आदि का भेद करके उनके साथ सम्बन्ध कराता है वह भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है, क्योंकि वह भेद कल्पना से सहित हैं।

विशेषार्थ – आत्मा में ज्ञान, दर्शन आदि गुणों की कल्पना करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। अर्थात् एक अखण्ड द्रव्य में गुणों का भेद करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

अन्वय द्रव्यार्थिक नय

णिस्सेससहावाणं अण्णयरूवेण दव्वदव्वेदि ।
दव्वठवणो हि जो सो अण्णयदव्वत्थिओ भणिओ ॥24॥

निःशेषस्वभावानां अन्वयरूपेण द्रव्यं द्रव्यमिति ।
द्रव्यस्थापना हि यः सोऽन्वयद्रव्यार्थिको भणितः ॥24॥

अर्थ – समस्त स्वभावों में जो यह द्रव्य है इस प्रकार अन्वयरुप से द्रव्य की स्थापना करता है वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है।

विशेषार्थ – द्रव्य का गुणपर्याय स्वभाव है और गुण पर्याय और स्वभाव में 'यह द्रव्य है, यह द्रव्य है' ऐसा बोध करानेवाला नय अन्वय द्रव्यार्थिक है। अन्वय का अर्थ है - 'यह यह है' इस प्रकार की अनुस्यूत प्रवृत्ति वह जिसका

विषय है वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय हैं। जैसे - कड़े आदि पर्यायों में तथा पीतत्व आदि गुणों में अन्वय रूप से रहने वाला स्वर्ण अथवा मनुष्य, देव आदि नाना पर्यायों में यह जीव है, यह जीव है ऐसा अन्वय द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

स्व, पर द्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय

सद्दव्वादिचउक्के संतं दव्वं खु गिह्णए जो हु ।
णियदव्वादिसु गाही सो इयरो होइ विवरीयो ॥25॥

स्वद्रव्यादिचतुष्के सद्द्रव्यं खलु गृह्णाति यो हि।
निजद्रव्यादिषु ग्राही स इतरो भवति विपरीतः ॥25॥

अर्थ – जो स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव में वर्तमान द्रव्य को ग्रहण करता है वह स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय है। और जो पर द्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव में असत् द्रव्य को ग्रहण करता है वह पर द्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेषार्थ – प्रत्येक द्रव्य स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा सत् है और पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और पर भाव की अपेक्षा असत् है। स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र , स्वकाल और स्वभाव को स्वचतुष्टय कहते हैं। स्वयं द्रव्य तो स्वद्रव्य है। उस द्रव्य के जो अखण्ड प्रदेश हैं वही उसका स्वक्षेत्र है, प्रत्येक द्रव्य में रहने वाले गुण उसका स्वकाल है और गुणो के अंश 'अविभाग प्रतिच्छेद हैं , वह स्वभाव है। इसी स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से द्रव्य के अस्तित्व को अस्तिरूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से जो नय विवक्षित पदार्थ में वस्तु के नास्तित्व को बतलाता है वह परद्रव्यादि सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय है। जैसे रजत द्रव्य, रजत क्षेत्र , रजत काल , रजत पर्याय अर्थात् रजतादि रूप से स्वर्ण नास्ति है।

परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय

गिह्णइ दव्वसहावं असुद्धसुद्धोपचारपरिचत्तं ।
सो परमभावगाही णायव्वो सिद्धिकामेण ॥26॥

गृह्णाति द्रव्यत्वभावं अशुद्धशुद्धोपचारपरित्यक्तम् ।
स परमभावग्राही ज्ञातव्यः सिद्धिकामेन ॥26॥

अर्थ – जो अशुद्ध, शुद्ध और उपचरित स्वभाव से रहित परमस्वभाव को ग्रहण करता है वह परमभाव ग्राही द्रव्यार्थिक नय है, उसे मोक्षेच्छुक भव्य को जानना चाहिए।

विशेषार्थ – यद्यपि आत्मद्रव्य संसार और मुक्तपर्यायों का आधार है तथापि आत्मद्रव्य कर्मो के बंध और मोक्ष का कारण नहीं होता है। अशुद्ध व शुद्ध पने के उपचार से रहित जो केवल द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करता है। वह परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। अथवा, आत्मा कर्म से उत्पन्न नहीं होता और न कर्मक्षय से उत्पन्न होता है - द्रव्य के ऐसे भाव को बतलाने वाला परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

<u>पर्यायार्थिक नयों के 6 भेद</u>-

अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय

अक्कट्टिमा अणिहणा ससिसूराईण पज्जया गिह्णइ ।
जो सो अणाइणिच्चो जिणभणिओ पज्जयत्थिणओ ॥27॥

अकृत्रिमाननिधनान् शशिसूर्यादीनां पर्यायान् गृह्णाति ।
यः सोऽनादिनित्यो जिनभणितः पर्यायार्थिको नयः ॥27॥

अर्थ – जो अकृत्रिम और अनिधन अर्थात् अनादि अनन्त चन्द्रमा

सूर्य आदि पर्यायों को ग्रहण करता है उसे जिन भगवान् ने अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय कहा है।

विशेषार्थ - भरत आदि क्षेत्र, हिमवत् आदि पर्वत, पद्मादि सरोवर, सुदर्शन आदि मेरू पर्वत, लवण, कालोदधि आदि समुद्रों को मध्य में स्थित करके असंख्यातद्वीप समुद्र स्थित है; नरक के पटल, भवनवासियों के विमान, व्यंतरों के विमान, चन्द्र, सूर्य आदि मंडल ज्योतिषियों के विमान और सौधर्मकल्पादि स्वर्गो के पटल; यथायोग्य स्थानों में परिणत अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय; मोक्ष-शिला और वृहद्वातवलय आदि अनेक आश्चर्य से युक्त परिणत पुद्गलों की अनेक द्रव्यपर्याय सहित परिणत लोकमहास्कंध आदि पर्यायें त्रिकालस्थित है इसलिये अनादि-अनिधन है। इस प्रकार के विषय को ग्रहण करने वाला अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी

सादि नित्य पर्यायार्थिक नय

कम्मक्खयादु पत्तो अविणासी जो हु कारणाभावे।
इदमेवमुच्चरंतो भण्णइ सो साइणिच्च णओ ॥28॥

कर्मक्षयात्प्राप्तोऽविनाशी यो हि कारणाभावे।
इदमेवमुच्चरन्भण्यते स सादिनित्यनयः ॥28॥

अर्थ - जो पर्याय कर्मो के क्षय से उत्पन्न होने के कारण सादि है और विनाश का कारण न होने से अविनाशी है, ऐसी सादि नित्य पर्याय को ग्रहण करने वाला सादि नित्य पर्यायार्थिक नय है।

विशेषार्थ - पर्यायार्थिक नय के प्रथम भेद का विषय अनादिनित्य

पर्याय है और दूसरे भेद का विषय सादि-नित्य पर्याय है। सिद्ध पर्याय ज्ञानावरणादि आठों कर्मो के क्षय से उत्पन्न होती है अतः सादि है किन्तु इस पर्याय का कभी नाश नहीं होगा इसलिये नित्य है। इसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाला क्षायिक ज्ञान, दर्शनावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाला क्षायिक दर्शन, मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक चारित्र तथा अनन्त सुख, अन्तराय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये सब क्षायिक भाव भी सादि-नित्य पर्याय हैं तथा इन पर्यायों को ग्रहण करने वाला नय सादि नित्य पर्यायार्थिक नय है।

अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय

सत्ता अमुक्खरूवे उप्पादवयं हि गिहणए जो हु।
सो दु सहाव अणिच्चो भण्णइ खलु सुद्धपज्जायो ॥29॥

सत्ताऽमुख्यरूपे उत्पादव्ययौ हि गृह्णाति यो हि।
स तु स्वभावानित्यो भण्यते खलु शुद्धपर्यायः ॥29॥

अर्थ – जो सत्ता को गौण करके उत्पाद व्यय को ग्रहण करता है उसे अनित्य स्वभाव को ग्रहण करने वाला शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते है।

विशेषार्थ – सत् का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं। प्रत्येक वस्तु प्रतिसमय उत्पन्न होती है, नष्ट होती है और ध्रुव भी रहती है। इनमें से जो नय ध्रौव्यको गौण करके प्रति समय होने वाले उत्पाद-व्ययरूप पर्यायको ही ग्रहण करता है वह अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय

जो गहइ एक्कसमए उप्पायवयद्धुवत्तसंजुत्तं ।
सो सब्भाव अणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थीओ णेओ ॥30॥

यो गृह्णाति एक्समये उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तम् ।
स सद्भावानित्योऽशुद्धः पर्यायार्थिकः ज्ञातव्यम् ॥30॥

अर्थ – जो एक समय में उत्पाद , व्यय और ध्रौव्य से युक्तपर्याय को ग्रहण करता है वह स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है ।

विशेषार्थ – यह नय पर्याय को उत्पाद-व्ययके साथ ध्रौव्यरूप भी देखता है, इसीलिए इसे अशुद्ध पर्यायार्थिक नय का नाम दिया गया है ।

कर्मोपधि निरपेक्ष अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय

देहीणं पज्जाया सुद्धा सिद्धाण भणइ सारित्था ।
जो इह अणिच्च सुद्धो पज्जयगाहो हवे स णओ ॥31॥

देहिनां पर्यायाः शुद्धाः सिद्धानां भणति सदृशाः ।
य इहानित्यः शुद्ध पर्यायग्राही भवेत्स नयः ॥31॥

अर्थ – जो संसारी जीवों की पर्याय को सिद्धों के समान शुद्ध कहता है वह अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है ।

विशेषार्थ – संसारी जीव की पर्याय तो अशुद्ध ही है क्योंकि उसके साथ कर्म की उपाधि लगी हुई है । कर्म की उपाधि हटे बिना पर्याय शुद्ध नहीं हो सकती । किन्तु यह नय उस उपाधि की अपेक्षा न करके संसारी जीव की पर्याय को सिद्धोंके समान शुद्ध कहता है इसी से इसका नाम कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

कर्मोपाधि सापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय

भणइ अणिच्चाऽसुद्धा चइगइजीवाण पज्जया जो हु।
होइ विभाव अणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थिणओ ॥32॥

भणत्यनित्याशुद्धांश्चतुर्गतिजीवानां पर्यायान्यो हि।
भवति विभावानित्योऽशुद्धपर्यायार्थिको नयः ॥32॥

अर्थ – जो चार गतियों के जीवों की अनित्य अशुद्ध पर्याय का कथन करता है वह विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

विशेषार्थ – शुद्ध पर्याय की विवक्षा न कर, कर्मजनित नारकादि विभाव पर्यायों को जीवस्वरूप बतलाने वाला नय विभाव अनित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

मार्गदर्शक ... भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

<u>नैगमादि नयों का स्वरूप</u> –

भूत नैगम नय का स्वरूप

णिव्वित्तदव्वकिरिया वट्टणकाले दु जं समाचरणं।
तं भूयणइगमणयं जह अड णिव्वुइदिणं वीरे ॥33॥

निवृत्तद्रव्यक्रिया वर्तने काले तु यत्समाचरणम्।
स भूतनैगमनयो यथा अद्य निर्वृतिदिनं वीरस्य ॥33॥

अर्थ – जो कार्य हो चुका उसका वर्तमान काल में आरोप करना भूत नैगमनय है। जैसे, आज के दिन भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ था।

विशेषार्थ – अनिष्पन्न अर्थ में संकल्पमात्र को ग्रहण करनेवाला नय नैगम है। ईंधन और जल आदि के लाने में लगे हुए किसी पुरुष से कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे है ? उसने कहा - भात पका रहा हूँ। उस समय भात

पर्याय सन्निहित नहीं है। केवल भात के लिये किये गये व्यापार में भात का प्रयोग किया गया है। यह सब नैगम नय का विषय है। यद्यपि तीर्थकर परमदेव आदि योगीन्द्र अतीतकाल में सम्पूर्ण कर्मो का क्षय करके निर्वाण को प्राप्त कर चुके है फिर भी वर्तमान में वे सम्पूर्ण कर्मो का क्षय करने वाले हैं, इस प्रकार निर्वाण की पूजा, अभिषेक और अर्चना विशेष क्रियाओं को वर्तमान में करते और कराते है। अथवा व्रतगुरू, दीक्षा-गुरू, शिक्षा-गुरू, जन्म-गुरू आदि सत्पुरूष समाधि विधि से दूसरी गति को प्राप्त हो चुके हैं, फिर भी वे आज समाधि से युक्त हुए हैं, इस प्रकार से उस दिन के गुणानुराग से दान, पूजा, अभिषेक और अर्चा को वर्तमान काल में करते हैं। इस प्रकार अतीत विषयों को वर्तमान के समान कथन करना भूत नैगम नय है।

वर्तमान नैगमनय का स्वरूप

पारद्धा जा किरिया पयणविहाणादि कहइ जो सिद्धा।
लोए य पुच्छमाणे तं भण्णइ वट्टमाणणयं ॥34॥

प्रारब्धा या क्रिया पचनविधानादिः कथयति यः सिद्धाम्।
लोके च पृच्छ्यमाने स भण्यते वर्तमाननयः ॥34॥

अर्थ – जो प्रारम्भ की गई पकाने आदि की क्रिया को लोगों के पूछने पर सिद्ध या निष्पन्न कहना है वह वर्तमान नैगमनय है।

विशेषार्थ – प्रारम्भ किये गये किसी कार्य को, उस कार्य के पूर्ण नहीं होने पर भी पूर्ण हुआ कह देना वर्तमान नैगम नय है। जैसे- कोई पुरूष भात बनाने की सामग्री इकट्ठी कर रहा था किन्तु उसका यह कहना कि 'भात बना रहा हूँ' वर्तमान नैगम नय का विषय जानना चाहिये।

णिप्पण्णमिव पयंपदि भाविपयत्थं णरो अणिप्पण्णं ।
अप्पत्थे जह पत्थं भण्णइ सो भावि णइगमोत्ति णओ ॥35॥

निष्पन्नमिव प्रजल्पति भाविपदार्थं नरोऽनिष्पन्नम् ।
अप्रस्थे यथा प्रस्थः भण्यते स भाविनैगम इति नयः ॥35॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अर्थ – जो अनिष्पन्न भावि पदार्थ को निष्पन्न की तरह कहता है उसे भावि नैगमनय कहते है जैसे अप्रस्थ को प्रस्थ कहना ।

विशेषार्थ – जो अभी बना नहीं है उसे अनिष्पन्न कहते हैं। और बन जाने पर निष्पन्न कहते है । भावि में भूत की तरह व्यवहार करना अर्थात् अनिष्पन्न में निष्पन्न व्यवहार करना भाविनैगमनय है। जैसे कोई पुरूष कुठार लेकर वन की ओर जाता है, उससे कोई पूछता है आप किस लिए जाते है ? वह उत्तर देता है- प्रस्थ लेने जाता हूँ। इस प्रकार का वचन व्यवहार भावि नैगमनय का विषय है।

संग्रह नय के भेदों का स्वरूप

अवरे परमविरोहे सव्वं अत्थित्ति सुद्धसंगहणो ।
होई तमेव असुद्धो इगजाइविसेसगहणेण ॥36॥

अपरे परमविरोधे सर्वं अस्ति इति शुद्धसंग्रहणं ।
भवति स एवाशुद्धः एकजातिविशेषग्रहणेन ॥36॥

अर्थ – संग्रह नय के दो भेद है - शुद्ध संग्रहनय और अशुद्ध संग्रह नय। शुद्ध संग्रहनय में परस्पर में विरोध न करके सत् रुप से सबका ग्रहण किया जाता है और जो नय सत् रुप से ग्रहण पदार्थ की किसी एक जाति विशेष को

ग्रहण करता है उसे अशुद्ध संग्रहनय कहते है।

विशेषार्थ - अपनी-अपनी जाति के अनुसार वस्तुओं का या उनकी पर्यायों का परस्पर विरोध रहित एक रूप से संग्रह करने वाले ज्ञान और वचन को संग्रहनय कहते है। जैसे'सत्' कहने से जो सत् है उन सभी का ग्रहण हो जाता है। और द्रव्य कहने से सब द्रव्यों का ग्रहण हो जाता है। जीव कहने से सब जीवों का और पुद्गल कहने से सब पुदगलों का ग्रहण हो जाता है। इनमें से जो समस्त उपाधियों से रहित शुद्ध सन्मात्र को विषय करता है वह तो शुद्ध संग्रहनय है, जैसे सेना, वन नगर आदि का ग्रहण। उसको पर संग्रह भी कहते हैं। और उसके अवान्तर किसी एक भेद को संग्रह रूप से विषय करता है वह अशुद्ध संग्रहनय या अपर संग्रहनय है। जैसे - हाथियों का समूह, आम व नारियल का समूह।

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

व्यवहारनय के भेदों का स्वरूप

जं संगहेण गहियं भेयइ अत्थं असुद्ध सुद्धं वा।
सो ववहारो दुविहो असुद्धसुद्धत्थभेयकरो ॥37॥

यः संग्रहेण गृहीतं भिनत्ति अर्थ अशुद्धं शुद्धं वा।
स व्यवहारो द्विविधोऽशुद्धशुद्धार्थभेदकरः ॥37॥

अर्थ - जो संग्रहनय के द्वारा गृहीत शुद्ध अथवा अशुद्ध अर्थ का भेद करता है वह व्यवहारनय है। उसके भी दो भेद है - अशुद्ध अर्थ का भेद करने वाला और शुद्ध अर्थ का भेद करने वाला।

विशेषार्थ - संग्रह नय से ग्रहण किये हुए पदार्थ को भेद रूप से व्यवहार करता है, ग्रहण करता है, वह व्यवहार नय है। जैसे जीव के मुक्त एवं संसारी इत्यादि भेद ग्रहण करना। जो सामान्यसंग्रह के द्वारा कहे गये अर्थ को

जीव अजीव आदि के भेद से विभाजन करता है वह शुद्ध संग्रह का भेदक व्यवहारनय है। इस तरह सामान्यसंग्रह नय के द्वारा स्वीकृत सत्ता सामान्य अर्थ को भेदकर जीव, पुद्गल कहना; सेना शब्द के द्वारा स्वीकृत अर्थ को भेदकर हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादे आदि को कहना; नगर शब्द के द्वारा स्वीकृत पदार्थ का भेद कर लुहार, सुनार, कंसार, औषधिकार, मारक, जलकार, वैद्य आदि कहना; वन शब्द के द्वारा स्वीकार किये गये अर्थ को भेदकर पनस आम, नारियल, सुपारी आदि वृक्षों को कहना सामान्य संग्रह का भेदक व्यवहारनय है। विशेष संग्रहनय के विषयभूत पदार्थ को भेदरूप से ग्रहण करने वाला विशेष संग्रहभेदक व्यवहार नय है, जैसे-जीव के संसारी और मुक्त ऐसे दो भेद करना।

ऋजु सूत्र नय के भेदों का स्वरूप

जो एयसमयवट्टी गिह्णइ दव्वे धुवत्तपज्जाओ ।
सो रिउसुत्तो सुहुमो सव्वं पि सदं जहा खणियं ॥38॥

य एकसमयवर्तिनं गृह्णाति द्रव्ये ध्रुवत्वपर्यायम् ।
स ऋजुसूत्रः सूक्ष्मः सर्वमपि सद्यथा क्षणिकम् ॥38॥

मणुबाइयपज्जाओ मणुसुत्ति सगट्ठिदीसु बट्टंतो ।
जो भणइ तावकालं सो थूलो होइ रिउसुत्तो ॥39॥

मनुजादिकपर्यायो मनुष्य इति स्वकस्थितिषु वर्तमानः।
यो भणति तावत्कालं स स्थूलो भवति ऋजुसूत्र : ॥39॥

अर्थ - जो द्रव्य में एक समयवर्ती अध्रुवपर्याय को ग्रहण करता है उसे

सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय कहते है। जैसे सभी शब्द क्षणिक है और जो अपनी स्थितिपर्यन्त रहने वाली मनुष्य आदि पर्याय को उतने समय तक (पर्याय स्थिति) एक मनुष्य रुप से ग्रहण करता है वह स्थूल ऋजुसूत्र नय है।

विशेषार्थ – द्रव्य की भूत और भाविपर्यायों को छोड़कर जो वर्तमान पर्याय को ही ग्रहण करता है उस ज्ञान और वचन को ऋजुसूत्रनय कहते है। प्रत्येक वस्तु प्रति समय परिणमनशील है, इसलिए वास्तव में तो एक पर्याय एक समय तक ही रहती है। उस एक समयवर्ती पर्याय को अर्थ पर्याय कहते हैं। वह अर्थपर्याय सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय का विषय है। किन्तु व्यवहार में एक स्थूलपर्याय जब तक रहती है, तब तक लोग उसे वर्तमान पर्याय कहते हैं जैसे मनुष्य पर्याय आयु पर्यन्त रहती है। ऐसी स्थूल पर्याय को स्थूल ऋजुसूत्र नय ग्रहण करता है।

शब्दनय का स्वरूप

जो वट्टणं च मण्णइ एयट्ठे भिण्णलिङ्गमाईणं ।
सो सद्दणओ भणिओ णेओ पुस्साइयाण जहा ॥40॥

यो वर्तनं च मन्यते एकार्थे भिन्नलिंगादीनाम् ।
स शब्दनयो भणितः ज्ञेयः पुष्यादीनां यथा ॥40॥

अहवा सिद्ध सद्दे कीरइ जं किंपि अत्थववहरणं ।
तं खलु सद्दे विसयं देवो सद्देण जह देवो ॥41॥

अथवा सिद्धे शब्दे करोति यः किमपि अर्थव्यवहरणम्।
स खलु शब्दस्य विषयः देवशब्देन यथा देवः ॥41॥

अर्थ - जो नय एक अर्थ में भिन्न लिंग आदि वाले शब्दों की प्रवृत्ति को स्वीकार नहीं करता उसे शब्द नय कहते हैं। जैसे पुष्य आदि शब्दों में लिंग भेद होने से अर्थ भेद जानना चाहिए।

अथवा सिद्ध शब्द में जो कुछ अर्थ का व्यवहार किया जाता है वह शब्दनय का विषय है जैसे देव शब्द से देव अर्थ लिया जाता है।'

विशेषार्थ - लिंग, संख्या, साधन आदि के व्यभिचार दूर करने वाले ज्ञान और वचन को शब्दनय कहते हैं। भिन्न लिंग वाले शब्दों का एक ही वाच्य मानना लिंग व्यभिचार है, जैसे तारका और स्वाति का, अवगम और विद्याका, वीणा और वाद्यका एक ही वाच्यार्थ मानना। विभिन्न वचनों में प्रयुक्तहोनेवाले शब्दों-का एक ही वाच्य मानना वचनव्यभिचार है। जैसे आपः और जल का, तथा दाराः और स्त्री का। इसी तरह मध्यम पुरूष का कथन उत्तम पुरूष की क्रिया के द्वारा करना पुरूष व्यभिचार है। ' होनेवाला' काम हो गया' ऐसा कहना कालव्यभिचार है, क्योंकि हो गया तो भूतकाल को कहता है और होनेवाला आगामी काल को कहता है। इस तरह व्यभिचार शब्दनय की दृष्टि में उचित नहीं है। जैसा शब्द कहता है, वैसा ही अर्थ मानना इस नय का विषय है। अर्थात् यह नय शब्द में लिंगभेद, वचनभेद, कारकभेद, पुरूषभेद, और कालभेद होने से उसके अर्थ में भेद मानता है।

समभिरूढ नय का स्वरूप

सद्दारूढो अत्थो अत्थारूढो तहेव पुण सद्दो ।
भणइ इह समभिरूढो जह इंद पुरंदरो सक्के ॥42॥

शब्दारूढोऽर्थोऽर्थारूढस्तथैव पुनः शब्दः ।
भणति इह समभिरूढो यथा इन्द्रः पुरंदरः शक्रे ॥42॥

अर्थ - जो अर्थ को शब्दारुढ़ और शब्द को अर्थारुढ़ कहता है वह समभिरुढ़ नय है जैसे इन्द्र, शक्र और पुरन्दर।

विशेषार्थ - समभिरूढ़ नय के दो अर्थ है जैसा मूल में ग्रन्थकार ने भी बताया है। एक तो अनेक अर्थोको छोड़कर किसी एक अर्थ में मुख्यता से रूढ़ होने को समभिरूढ़ नय कहते हैं। जैसे'गौ' शब्द के ग्यारह अर्थ होते है, किन्तु वह सबको छोड़कर'गाय' के अर्थ में रूढ़ है। यह शब्द को अर्थारूढ़ मानने का उदाहरण है। दूसरा-शब्द - भेद से अर्थ का भेद मानने वाला समभिरूढ़नय है। जैसे इन्द्र, शक्र और पुरन्दर ये तीनों शब्द स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के वाचक है और एक ही लिंग के है, किन्तु समभिरूढ़ नय के अनुसार ये तीनों शब्द इन्द्र के भिन्न-भिन्न धर्मो को कहते है। वह आनन्द करता है इसलिए उसे इन्द्र कहते हैं, शक्तिशाली होने से शक्र और नगरों का उजाड़नेवाला होने से पुरन्दर कहा जाता है। इस तरह जो नय शब्द भेद से अर्थभेद मानता है वह समभिरूढ़ नय है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागरजी महाराज

एवंभूत नय का स्वरूप

जं जं करेइ कम्मं देही मणवयणकायचिट्ठाहिं ।
तं तं खु णामजुत्तो एवंभूओ हवे स णओ ॥43॥

यद्यत्कुरुते कर्म देही मनोवचनकायचेष्टातः ।
तत्तत्खलु नामयुक्त एवंभूतो भवेत्स नयः ॥43॥

अर्थ - जीव मन, वचन, और काय की चेष्टा से जो- जो क्रिया करता है उस-उस नाम से वह युक्त होता है। यह एवंभूत नय का स्वरूप जानना चाहिये।

विशेषार्थ - जिस शब्द का अर्थ जिस क्रियारूप हो उस क्रिया रूप

परिणमे पदार्थ को ही ग्रहण करने-वाला एवंभूत नय है। जैसे - इन्द्र शब्दका अर्थ आनन्द करना है। अतः जिस समय स्वर्गका स्वामी आनन्द करता हो उसी समय उसे इन्द्र कहना चाहिए, जब पूजन करता हो तो पूजक कहना चाहिए। यह एवंभूत-नय का विषय है।

नैगमादि नयों में द्रव्यार्थिकादि नयों का भेद

पढमतिया दव्वत्थी पज्जयगाही य इयर जे भणिया।
ते चदु अत्थपहाणा सद्दपहाणा हु तिण्णियरा ॥44॥

प्रथमात्रिका द्रव्यार्थिकाः पर्यायग्राहिणश्चेतरे ये भणिताः।
ते चत्वारोऽर्थप्रधानाः शब्दप्रधाना हि त्रय इतरे ॥44॥

अर्थ – पहले के तीन नय द्रव्यार्थिक है बाकी के नय पर्याय को ग्रहण करते है। प्रारम्भ के चार नय अर्थ प्रधान है और शेष तीन नय शब्द प्रधान है।

विशेषार्थ – जो द्रव्य की मुख्यता से वस्तु को ग्रहण करता है। वह द्रव्यार्थिक नय है अतः नैगम, संग्रह और व्यवहार नय द्रव्यार्थिक है। जो पर्याय की प्रधानता से अर्थ को ग्रहण करता है, वह पर्यायार्थिक नय है। ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत पर्यायार्थिक नय है नय के ये भेद द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु के एक-एक अंश द्रव्य और पर्याय को लेकर किये गये है। इसी तरह अर्थ (पदार्थ) और शब्द की प्रधानता से भी नय के दो भेद है-अर्थनय और शब्द नय। अर्थ प्रधान नयों को अर्थनय कहते हैं। प्रारम्भ चार नय अर्थप्रधान होने से अर्थनय हैं। शेष तीन शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत शब्द की प्रधानता से पदार्थ को ग्रहण करते हैं जैसा उनके लक्षणों से स्पष्ट है जो पहले कह आये हैं, अतः वे शब्द नय हैं।

पण्णवणभाविभूदे अत्थे जो सो हु भेयपज्जाओ ।
अह तं एवंभूदो संभवदो मुणह अत्थेसु ॥45॥

प्रज्ञापनं भाविभूतेऽर्थे यः स हि भेदपर्यायः ।
अथ स एवं भूतः संभवतो मन्यध्वं अर्थेषु ॥45॥

अर्थ - इस गाथा का अर्थ स्पष्ट नहीं है। संभव भावार्थ यह प्रतिभासित होता है कि वर्तमान , भूत और आगामी प्रत्येक समय की पर्यायों में जो भेद है। एवंभूत नय यह भेद स्वीकार करता है।

शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय का स्वरूप

गुणगुणिपज्जयदव्वे कारयसब्भावदो य दव्वेसु ।
सण्णाईहि य भेयं कुण्णइ सब्भूयसुद्धियरो ॥46॥

गुणगुणिपर्ययद्रव्ये कारक सद्भावतश्च द्रव्येषु ।
संज्ञादिभिश्च भेदं करोति सद्भूतशुद्धिंकरः ॥46॥

अर्थ - शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय गुण और पर्याय के द्वारा द्रव्य में तथा कारक भेद से द्रव्यों में संज्ञा आदि के द्वारा भेद करता है ॥46॥

विशेषार्थ - सद्भूत व्यवहार नय के दो भेद हैं- शुद्धसद्भूत व्यवहार नय और अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय। सद्भूत व्यवहार नय का विषय एक ही द्रव्य होता है। शुद्ध गुण और शुद्ध गुणी में, शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायी में भेद करनेवाला शुद्धसद्भूत व्यवहार नय है, जैसे जीव के केवलज्ञानादि गुण है। इसे अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय भी कहते हैं। और अशुद्ध गुण अशुद्ध गुणी में तथा अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायी में भेद करने वाला अशुद्ध सद्भूतव्यवहारनय है; जैसे जीव के मतिज्ञानादिगुण हैं। इसे उपचरित सद्भूतव्यवहारनय भी कहते हैं।

दव्वाणं खु पएसा बहुगा ववहारदो य इक्केण ।
अण्णेय य णिच्छयदो भणिया का तत्थ खलु हवे जुत्ती ॥47॥

द्रव्याणां खलु प्रदेशा बहुगा व्यवहारतश्च एकेषाम् ।
अन्येन च निश्चयतो भणिताः का तत्र खलु भवेद्युक्तिः ॥47॥

अर्थ – एक आचार्य ने व्यवहार नय से द्रव्यों के बहुत प्रदेश कहे है। अन्य आचार्य ने निश्चय नय से द्रव्य के बहुत प्रदेश कहे हैं। इसमें क्या युक्ति है ॥47॥

तदुच्यते –

व्यवहाराश्रयाद्यस्तु संख्यातीतप्रदेशवान् ।
अभिन्नात्मैकदेसित्वादेक देशोऽपि निश्चयात् ॥1॥

कहा भी है - व्यवहार नय के आश्रय से जो असंख्यात प्रदेशी है वही निश्चयनय से अभिन्न एक आत्म रूप होने से एक प्रदेशी भी है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥48॥

अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पतः चेतयिता ।
असमुद्धातात् व्यवहारात् निश्चयनयतो संख्यदेशो वा ॥48॥

अर्थ – व्यवहारनय से आत्मा संकोच - विस्तार गुण के कारण समुद्धात अवस्था के अतिरिक्त शेष सब अवस्थाओं में प्राप्त छोटे या बड़े निज शरीर के बराबर है और निश्चयनय से असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश के बराबर है।

एयपदेसे दव्वं णिच्छयदो भेयकप्पणारहिदा ।
संभूएणं बहुगा तस्स य ते भेयकप्पणासहिए ॥49॥

एक प्रदेशे द्रव्यं निश्चयतः भेद कल्पना रहितः ।
सद्भूतं बहुगा तस्य यः ते भेदकल्पनासहितः ॥49॥

अर्थ – भेद कल्पना रहित निश्चयनय से द्रव्य एक प्रदेशी है और भेद कल्पना सहित सद्भूत व्यवहारनय से बहुत प्रदेशी है।

विशेषार्थ – 47, 48, 49 – जैन सिद्धान्त में विविध नयों के द्वारा वस्तु स्वरूप का कथन किया गया है। यदि नय दृष्टि को न समझा जावे तो उस कथन में परस्पर विरोध प्रतीत हुए बिना नहीं रह सकता। इसका उदाहरण शंकाकार की उक्त शंका ही है कि किसी आचार्य ने व्यवहार नय से जीव के बहुत प्रदेश कहे हैं और किसी आचार्य ने निश्चय नय से जीव के बहुत प्रदेश कहे हैं। इसमें क्या युक्ति है ? क्यों उन्होंने ऐसा कहा है ? ग्रन्थकार उत्तर देते हैं कि यद्यपि जीव द्रव्य एक और अखण्ड है। किन्तु वह बहुप्रदेशी है, तभी तो उसे छोटा या बड़ा जैसा शरीर प्राप्त होता है उसी में व्याप्त होकर रह जाता है। बड़ा शरीर मिलने पर उसी जीव के प्रदेश फैल जाते हैं और छोटा शरीर मिलने पर संकुचित हो जाते है किन्तु ऐसा होने से उसकी अवगाहना तो घटती-बढ़ती है , परन्तु प्रदेश नहीं घटते - बढ़ते। जैसे रबड़ को तानने पर वह फैल जाती है , फिर सकुच जाती है , किन्तु रबड़ के प्रदेश उतने ही रहते हैं। इस तरह जीव असंख्यात प्रदेशी है, किन्तु प्रदेश भेद होते हुए भी जीव तो एक अखण्ड ही है। अतः भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध निश्चयनय से जीव एक प्रदेशी

मार्गदर्शक :– आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

है और भेद कल्पना सापेक्ष सद्भूत व्यवहार नय से बहुप्रदेशी है। इस प्रकार नय भेद से उक्त कथन भेद का समन्वय कर लेना चाहिए।

असद्भूत भूत व्यवहार नय का लक्षण एवं भेद

अण्णेसिं अण्णगुणा भणइ असब्भूय तिविहभेदेवि।
सज्जाइइयरमिस्सो णायव्वो तिविहभेदजुदो ॥50॥

अन्येषामत्र गुणा भणिता असद्भूतत्रिविधभेदेऽपि।
स्वजातीय इतरो मिश्रो ज्ञातव्यस्त्रिविधभेदयुतः ॥50॥

अर्थ – जो अन्य के गुणों को अन्य का कहता है वह असद्भूत व्यवहारनय है। उसके तीन भेद है सजाति, विजाति और मिश्र तथा उनमें से भी प्रत्येक के तीन - तीन भेद हैं।

विशेषार्थ – उपर्युक्त सभी के भेदों का खुलासा आगे करिकाओं में किया जायेगा।

दव्वगुणपज्जयाणं उवयारं होइ ताण तत्थेव।
दव्व गुणपज्जया गुणे दवियपज्जया णेया ॥51॥

द्रव्यगुणपर्यायाणां उपचारो भवति तेषां तत्रैव।
द्रव्ये गुणपर्यायौ गुणे द्रव्यपर्याया ज्ञेयाः ॥51॥

पज्जाये दव्वगुणा उवयरियव्वा हु बंधसंजुत्ता।
संबंधे संसिलेसो णाणीणं णेयमादीहिं ॥52॥

पर्याये द्रव्यगुणा उपचरितव्या हि बन्धसंयुक्ताः।
संबन्धे संश्लेषे ज्ञानिनां नैगमादिभिः ॥52॥

अर्थ – द्रव्य में द्रव्य का, गुण में गुण का, पर्याय में पर्याय का, द्रव्य में गुण और पर्याय का गुण में द्रव्य और पर्याय का और पर्याय में द्रव्य और गुण का उपचार करना चाहिए। यह उपचार बन्ध से संयुक्त अवस्था में तथा ज्ञानी का ज्ञेय आदि के साथ सम्बन्ध होने पर किया जाता है।

विशेषार्थ – उपर्युक्त विषय का विवेचन आगे गाथाओं में किया गया है।

विजातीय द्रव्य में विजातीय द्रव्य का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय

एइंदियादिदेहा णिच्चत्ता जेवि पोग्गले काये ।
ते जो भणेइ जीवो ववहारो सो विजातीओ ॥53॥

एकेन्द्रियादिदेहा निश्चिता येऽपि पौद्गले काये ।
ते ये भाणिता जीवा व्यवहारः स विजातीयः ॥53॥

अर्थ – पौद्गलिक काय में जो एकेन्द्रिय आदि के शरीर बनते हैं उन्हें जो जीव कहता है वह विजातीय असद्भूत व्यवहार नय है।

विशेषार्थ – शरीर पौद्गलिक है - पुद्गल परमाणुओं से बना है। उसमें जीव का निवास होने से तथा जीव के साथ ही उसका जन्म होने से लोग जीव कहते हैं, किन्तु यथार्थ में तो शरीर जीव नहीं है, जीव से भिन्न द्रव्य है। जीव द्रव्य चेतन ज्ञानवान् है और शरीर जड़ है, रूप रस गन्ध स्पर्श गुणवाला है। अतः विजातीय द्रव्य शरीर में विजातीय द्रव्य जीव का आरोप करनेवाला नय विजातीय असद्भूत व्यवहार नय है।

विजातीय गुण में विजातीय गुण को आरोपण करने वाला असद्भूत व्यवहार नय

मुत्तं इह मइणाणं मुत्तिमदव्वेण जण्णियं जह्मा ।
जइ णहु मुत्तं णाणं ता कह खलियं हि मुत्तेण ॥54॥

मूर्त्तमिह मतिज्ञानं मूर्तिकद्रव्येण जनितं यस्मात् ।
यदि नहि मूर्तं ज्ञानं तत्कथं स्खलितं हि मूर्तेन ॥54॥

अर्थ – मतिज्ञान मूर्तिक है क्योंकि मूर्तिक द्रव्य से पैदा होता है यदि मतिज्ञान मूर्त न होता तो मूर्त के द्वारा वह स्खलित क्यों होता।

विशेषार्थ – आत्मा अमूर्तिक है, अतः उसका ज्ञानगुण भी अमूर्तिक है। किन्तु जैसे कर्मबन्ध के कारण अमूर्तिक आत्मा को व्यवहार से मूर्तिक कहा जाता है, वैसे ही कर्मबद्ध आत्मा के इन्द्रियों की सहायता से होने वाला मतिज्ञान भी मूर्त कहलाता है। क्योंकि वह मूर्त इन्द्रियों से पैदा होता है, मूर्त पदार्थों को जानता है, मूर्त के द्वारा उसमें बाधा उपस्थित हो जाती है, यह विजातीय गुण ज्ञान में विजातीय गुण मूर्तता का आरोप करनेवाला असद्भूत व्यवहारनय है।

स्वजातीय पर्याय में स्वजातीय पर्याय का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय

दट्ठूणं पडिबिंबं भवदि हु तं चेव एस पज्जाओ ।
सज्जाइअसब्भूओ उवयरिओ णिययजातिपज्जाओ ॥55॥

दृष्ट्वा प्रतिबिम्बं भवति हि स चैव एष पर्यायः ।
स्वजात्यसद्भूतोपचरितो निजजातिर्यायः ॥55॥

अर्थ – प्रतिबिम्ब को देखकर यह वही पर्याय है जो ऐसा कहता है वह स्वजाति पर्याय में स्वजाति पर्याय का उपचार करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है।

विशेषार्थ – दर्पण भी पुद्गल की पर्याय है उसमें प्रतिबिम्बित मुख भी पुद्गल की पर्याय है तथा जिस मुख का उसमें प्रतिबिम्ब पड़ रहा है वह मुख भी पुद्गल की पर्याय है। दर्पण में प्रतिबिम्बित मुख को देखकर यह कहना कि यह वही मुख है - यह स्वजाति पर्याय में स्वजाति पर्याय का आरोप करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय है।

स्वजातीय विजातीय द्रव्य में स्वजाति विजातीय गुणारोपण करने वाला असद्भूत व्यवहार नय

णेयं जीवमजीवं तं पिय णाणं खु तस्स विसयादो ।
जो भणइ एरिसत्थं ववहारो सो असब्भूदो ॥56॥

ज्ञेयं जीवमजीवं तदपि च ज्ञानं खलु तस्य विषयात् ।
यो भणति ईदृशार्थं व्यवहारः सोऽसद्भूतः ॥56॥

अर्थ – ज्ञेय जीव भी है और अजीव भी है ज्ञान के विषय होने से उन्हें जो ज्ञान कहता है , वह असद्भूत व्यवहार नय है ।

विशेषार्थ – ज्ञान के लिए जीव स्वजाति द्रव्य है और जीव के लिए ज्ञान स्वजाति गुण है, क्योंकि जीव द्रव्य और ज्ञान गुण दोनों एक हैं । ज्ञान के बिना जीव नहीं और जीव के बिना ज्ञान नहीं । इसके विपरीत अजीव द्रव्य के लिए ज्ञानगुण विजातीय है और ज्ञानगुण के लिए अजीव द्रव्य विजातीय है ; क्योंकि दोनों में से एक जड़ है तो दूसरा चेतन है । किन्तु ज्ञान जीव को भी जानता है और अजीव को भी जानता है । इसलिए ज्ञान के विषय होने से जीव और अजीव को ज्ञान कहना स्वजाति, विजाति द्रव्य में स्वजाति, विजाति गुण का आरोप करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय है ।

स्वजाति द्रव्य में स्वजाति विभाव पर्याय का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय

परमाणु एयदेसी बहुप्पदेसी पयंपदे जो दु ।
सो ववहारो णेओ दव्वे पज्जायउवयारो ॥57॥

परमाणुरेकदेशी बहुप्रदेशी प्रजल्पति यस्तु ।
स व्यवहारो ज्ञेयः द्रव्ये पर्यायोपचारः ॥57॥

अर्थ – जो एक प्रदेशी परमाणु को बहुप्रदेशी कहता है उसे द्रव्य में पर्याय का उपचार करने वाला असद्भूत व्यवहार नय जानना चाहिए।

विशेषार्थ – पुद्गल का एक परमाणु एक प्रदेशी होता है। उसके दो आदि प्रदेश नहीं होते। किन्तु वही परमाणु अन्य परमाणुओं के साथ मिलने पर उपचारसे बहुप्रदेशी कहा जाता है। परमाणुओं के मेल से जो स्कन्ध बनता है वह पुद्गलकी विभावपर्याय है और परमाणुओं पुद्गल द्रव्य है। दोनों ही पौद्गलिक होने से एक जाति के है। इस प्रकार स्वजाति द्रव्य में स्वजाति पर्याय का आरोपण करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है।

स्वजाति गुण में स्वजाति द्रव्य का आरोपण करने वाला असद्भूत व्यवहार नय

रूवं पि भणइ दव्वं ववहारो अण्णअत्थसंभूदो ।
सेओ जह पासाणो गुणेसु दव्वाण उवयारो ॥58॥

रूपमपि भणति द्रव्यं व्यवहारोऽन्यार्थसंभूतः ।
श्वेतो यथा पाषाणो गुणेषु द्रव्याणामुपचारः ॥58॥

अर्थ – अन्य अर्थ में होने वाला व्यवहार रुप को भी द्रव्य कहता है जैसे सफेद पत्थर। यह गुणों में द्रव्य का उपचार है।

विशेषार्थ – सफेद रूप है और पत्थर द्रव्य है-दोनों ही पौद्गलिक होने से एक जातीय है। सफेद रूप में पाषाण द्रव्य का उपचार करना स्वजाति गुण में स्वजाति द्रव्य का उपचार करने वाला असद्भूत व्यवहारनय है।

स्वजाति गुण में स्वजाति पर्याय का आरोपण करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय

णाणं पि हि पज्जायं परिणममाणं तु गिह्णए जो हु।
ववहारो खलु जंपइ गुणेसु उवरियपज्जाओ ॥59॥

ज्ञानमपि हि पर्यायं परिणममाणं तु गृह्णाति यस्तु।
व्यवहारः खलु जल्पति गुणेषूपचरितपर्यायः ॥59॥

अर्थ – परिणमन शील ज्ञान को पर्याय रुप से कहा जाता है इसे गुणों में पर्याय का उपचार करने वाला असद्भूत व्यवहारनय कहते है।

विशेषार्थ – ज्ञान गुण है, किन्तु वह भी परिणमनशील है अतः उसे ज्ञानपर्याय रूपसे कहना गुण में पर्याय का उपचार करने वाला असद्भूत व्यवहारनय है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर

स्वजाति विभाव पर्याय में स्वजाति द्रव्य का आरोपण करने वाला असद्भूत व्यवहार नय

दट्ठूण थूलखंधो पुग्गलदव्वोत्ति जंपए लोए।
उवयारो पज्जाए पोग्गलदव्वस्स भणइ ववहारो ॥60॥

दृष्ट्वा स्थूलस्कन्धं पुद्गलद्रव्यमिति जल्पति लोके।
उपचारः पर्याये पुद्गलद्रव्यस्य भणति व्यवहारः ॥60॥

अर्थ – स्थूल स्कन्ध को देखकर लोक में उसे ' यह पुद्गल द्रव्य है' ऐसा कहते है इसे पर्याय में पुद्गल द्रव्य का आरोप करने वाला व्यवहार नय कहते है।

विशेषार्थ – अनेक पुद्गल परमाणुओं के मेल से जो स्थूल स्कन्ध बनता है वह पुद्गल द्रव्य की विभाव पर्याय है। उसे पुद्गल द्रव्य कहना स्वजाति पर्याय में स्वजाति द्रव्यका आरोप करने वाला असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं।

दट्ठूण देहठाणं वण्णंतो होई उत्तमं रूवं ।
गुणउवयारो भणिओ पज्जाए णत्थि संदेहो ॥61॥

आचार्य श्री सुनीलसागर जी

दृष्ट्वा देहस्थानं वर्ण्यमानं भवति उत्तमं रूपं ।
गुणोपचारो भणितः पर्याये नास्ति संदेहः ॥61॥

अर्थ – शरीर के आकार को देखकर उसका वर्णन करते हुए कहना कि कैसा उत्तम रुप है, यह पर्याय में गुण का उपचार है इसमें सन्देह नहीं।

विशेषार्थ – शरीर का आकार तो पर्याय है और रूप गुण है। अतः शरीर के आकार को देखकर यह कैसा सुन्दर रूप है। ऐसा कहना स्वजाति पर्याय में स्वजाति गुण का आरोप करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है।

व्यवहार सर्वथा असत् नहीं है

सद्दत्थ पच्चयादो संतो भणिदो जिणेहि ववहारो ।
जस्स ण हवेइ संतो हेऊ दोण्हंपि तस्स कुदो ॥62॥

शब्दार्थप्रत्ययतः सतो भणितो जिनैर्व्यवहारः ।
यस्य न भवेत्सत् हेतू द्वावपि तस्य कुतः ॥62॥

चइगइ इह संसारो तस्स य हेऊ सुहासुह कम्मं ।
जइ तं मिच्छा तो किह संसारो संखमिव तस्समये ॥63॥

चतुर्गतिरिह संसारस्तस्य च हेतुः शुभाशुभ कर्म ।
यदि तन्मिथ्या तर्हि कथं संसारः सांख्य इव तत्समये ॥63॥

एइंदियादिदेहा जीवा ववहारदो दु जिणदिट्ठा ।
हिंसादिसु जदि पावं सव्वत्थो किं ण ववहारो ॥64॥

एकेन्द्रियादिदेहा जीवा व्यवहारतस्तु जिनदृष्टाः ।
हिंसादिषु यदि पापं सर्वत्र किं न व्यवहारः ॥64॥

अर्थ – जिनेन्द्र देव ने सर्वत्र पर्याय रुप से व्यवहार को सत् कहा है। जो व्यवहार को सत् नहीं मानता उसके मत में संसार और मोक्ष के कारण कैसे बनेंगे ?

यह चार गति रुप संसार है उसके हेतु शुभ और अशुभ कर्म है। यदि वह मिथ्या है तो उसके मत में सांख्य की तरह वह संसार कैसे बनेगा ?

जिनेन्द्र देव ने व्यवहार नय से एकेन्द्रिय आदि जीवों के शरीर को जीव कहा है। यदि उनकी हिंसा करने में - पाप है तो सर्वत्र व्यवहार क्यों नहीं मानते?

विशेषार्थ – व्यवहारनय से जीव और शरीर एक हैं, किन्तु निश्चयनय से दोनों दो द्रव्य हैं वे कभी एक नहीं हो सकते। इसी तरह संसारी जीव कर्मों से बद्ध है और कर्म पौद्गलिक होने से रूप, रस, गन्ध स्पर्श गुणवाले हैं। इसलिए व्यवहार नय से जीव को भी रूपादिवान् कहा जाता है। किन्तु निश्चयनय से जीव रूपादिवाला नही है। इसी तरह संसारी जीव को बादर या सूक्ष्म, पर्याप्त या अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, सैनी, असैनी आदि कहा जाता है, यह सब व्यवहारनय से है। क्योंकि बादर या सूक्ष्म और पर्याप्त या अपर्याप्त तो शरीर होता है। इन्द्रियाँ भी शरीर- में ही होती है। जीव में तो इन्द्रियाँ नहीं होती। किन्तु उस शरीर में जीव का निवास होने से जीव को बादर आदि कहा जाता है। जैसे जिस घड़े में घी रखा रहता है उसे घी का घड़ा कह देते हैं। वास्तव में तो घड़ा घी का नहीं, मिट्टी का है। वैसे ही अज्ञानी लोगों को शुद्ध जीव का ज्ञान न होने से और अशुद्ध जीव से ही सुपरिचित होने से इन्द्रिय आदि के द्वारा ही जीव का ज्ञान कराया जाता है। किन्तु यथार्थ में तो ये सब शरीर के धर्म है। अतः अन्य के

धर्म को अन्य में आरोपण करना व्यवहार नय का विषय है। इसी से व्यवहार नय को असत्यार्थ या अभूतार्थ कहा है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि व्यवहार नय सर्वथा ही मिथ्या है। यदि ऐसा माना जायेगा तो परमार्थ से संसार और मोक्ष का ही अभाव हो जायेगा; क्योंकि जीव की संसार दशा भी तो व्यवहार से ही है। संसार दशा जीव का स्वरूप तो नहीं है, इसीलिए पराश्रित होने से वह व्यवहार नय का विषय है। और संसार पूर्वक ही मोक्ष होता हैं अतः जब संसार सर्वथा मिथ्या ठहरेगा तो मोक्ष का प्रश्न ही नहीं उठता। और जब संसार तथा मोक्ष नहीं रहेगा तो संसार के कारण आस्रव, बन्ध तथा मोक्ष के कारण संवर और निर्जरा भी नहीं रहेंगे। इसके सिवाय शरीर जीव को सर्वथा भिन्न मानकर उनका घात करने से हिंसा का पाप नहीं लगेगा। यदि पाप मानते हो तो सिद्ध होता है कि व्यवहार नय सर्वथा मिथ्या नहीं है।

बंधे वि मुक्खहेऊ अण्णो ववहारदो ये णायव्वा।
णिच्छयदो पुण जीवो भणिओ खलु सव्वदरसीहिं॥65॥

बन्धेऽपि मुख्यहेतुरन्यो व्यवहारतश्च ज्ञातव्यः।
निश्चयतः पुनर्जीवो भणितः खलु सर्वदर्शिभिः॥65॥

अर्थ – व्यवहार नय से बन्ध की तरह मोक्ष का हेतु भी अन्य जानना चाहिए। किन्तु निश्चयनय से सर्वदर्शी भगवान् ने निजभाव को बन्ध और मोक्ष का कारण कहा है।

विशेषार्थ – जो पराश्रित कथन है वह व्यवहारनय है। जो स्वाश्रित है वह निश्चय है। अतः व्यवहारनय से बन्ध की तरह मोक्ष का कारण भी अन्य है और निश्चयनय से बन्ध और मोक्ष का कारण आत्मा का भाव है।

जो चेव जीवभावो णिच्छयदो होई सव्वजीवाणं ।
सो चिय भेदुवयारा जाण फुडं होइ ववहारो ॥66॥

यश्चैव जीवभावः निश्चयतो भवति सर्वजीवनाम् ।
स चैव भेदापचारात्स्फुटं भवति व्यवहारः ॥66॥

अर्थ – निश्चय नय से जो जीव स्वभाव सब जीवों में होता है भेदोपचार से वह भी व्यवहार है ऐसा स्पष्ट जानों।

विशेषार्थ – जीव का जो नैश्चयिक स्वभाव है जो सब जीवों में पाया जाता है; यदि उसमें भी भेद का उपचार किया जाता है तो वह भी व्यवहारनयकी सीमा में ही आता है। अतः निश्चयनय की दृष्टि में आत्मा में दर्शन, ज्ञान और चारित्र का भी भेद नहीं है। क्योंकि आत्मा अनन्त धर्मो का एक अखण्ड पिण्ड है, किन्तु व्यवहारी मनुष्य धर्मो की विरूपता के बिना धर्मी आत्मा को नहीं समझते। अतः उन्हें समझाने के लिए अभेद रूप वस्तु में भी धर्मो का भेद करके ऐसा उपदेश किया जाता है कि आत्मा में दर्शन , ज्ञान एवं चारित्र है अतः अभेद में भेद का उपचार करने से यह व्यवहार है। परमार्थ से तो अनन्त गुण-पर्यायों को धारण किये हुए प्रत्येक द्रव्य अभेद रूप ही है।

भेदुवयारो णियमा मिच्छादिट्ठीण मिच्छरूवं खु ।
सम्मे सम्मो भणिओ तेहि दु बंधो व मुक्खो वा ॥67॥

भेदोपचारो नियमान्मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यारूपः खलु ।
सम्यक्त्वे सम्यक् भणितः तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा ॥67॥

अर्थ – मिथ्यादृष्टियों का भेद रूप उपचार तथा निश्चय मिथ्या होता है और सम्यग्दृष्टियों का सम्यक् होता है। उन्हीं से बन्ध अथवा मोक्ष होता है।

विशेषार्थ - जैसे सम्यग्दुष्टि का ज्ञान सच्चा और मिथ्यादुष्टि का ज्ञान मिथ्या होता है, वैसे ही मिथ्यादुष्टि का व्यवहार और निश्चयनय मिथ्या होता है और सम्यग्दुष्टि का सम्यक् होता है। साधारण तौर से व्यवहारनय को असत्यार्थ और निश्चयनय को सत्यार्थ कहा है। किन्तु मिथ्यादुष्टि का सत्यार्थ निश्चयनय भी सम्यक् नहीं होता और सम्यग्दुष्टि का असत्यार्थ व्यवहारनय भी सम्यक् होता है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ण मुणइ वत्थुसहावं अह विवरीयं खु मुणह णिरवेक्खं।
तं इह मिच्छाणाणं विवरीयं सम्मरूवं खु ॥68॥

न मिनोति वस्तुस्वभावं अथ विपरीतं खलु मिनोति निरपेक्षम्।
तदिह मिथ्याज्ञानं विपरीतं सम्यग्रूपं तु ॥68॥

अर्थ - जो वस्तु-स्वरुप को नहीं जानता या निरपेक्ष रुप से विपरीत जानता है वह मिथ्या ज्ञान है और उससे विपरीत सम्यग्ज्ञान है।

विशेषार्थ - वस्तु के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानना या निरपेक्ष रूप से कुछ का कुछ जानना मिथ्याज्ञान है। तथा सापेक्ष रूप से पदार्थों के स्वरूप को जानना सम्यग्ज्ञान है।

णो उवयारं कीरइ णाणस्स हु दंसणस्स वा णेए।
किह णिच्छित्तीणाणं अण्णेसिं होइ णियमेण ॥69॥

नो उपचारं कृत्त्वा ज्ञानस्य हि दर्शनस्य वा ज्ञेये।
कथं निश्चितिज्ञानमन्येषां भवति नियमेन ॥69॥

अर्थ - ज्ञान और दर्शन का ज्ञेय में उपचार नहीं किया जाता। तब नियम से अन्य पदार्थो के निश्चय को ज्ञान कैसे कहा जा सकता है ?

विशेषार्थ – ज्ञान गुण जीव का जीवोपजीवी गुण है। जब वह ज्ञेय घट, पट आदि को जानता है तो ज्ञेयोपजीवी नहीं होता। अर्थात् जैसे घट को जानते समय ज्ञान घट निरपेक्ष जीव का गुण है, वैसे ही घट आदि को नहीं जानते समय भी ज्ञान घट निरपेक्ष जीव का गुण है। आशय यह है कि अर्थ विकल्पात्मक ज्ञान को प्रमाण कहा जाता है। अर्थ 'स्व' और 'पर' के भेद से दो प्रकार का है और ज्ञान के तद्रूप होने का नाम विकल्प है। यह लक्षण निश्चय दृष्टि से ठीक नहीं है, क्योंकि सत्सामान्य निर्विकल्पक होता है। किन्तु अवलम्बन के बिना विषय रहित ज्ञान का कथन करना शक्य नहीं है। इसलिए घट, पट आदि ज्ञेयों का अवलम्बन लेकर ज्ञान का कथन किया जाता है। किन्तु वस्तुतः ज्ञान जीव का भावात्मक गुण है। उसका किसी भी काल में अभाव नहीं होता। अर्थात् ऐसा नहीं है कि घट, पट आदि बाह्य अर्थो के होने पर घट ज्ञान होता है और उनके अभाव में ज्ञान नहीं होता। जैसे उष्ण गुण के बिना अग्नि का अस्तित्व नहीं, वैसे ही ज्ञानगुण के बिना आत्मा का अस्तित्व नहीं। जो जानता है वही ज्ञान है, अतः आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है।

उपचरित असद्भूत व्यवहार नय

उवराया अवयारं सच्चासच्चेसु उहयअत्थेसु ।
सज्जाइइयरमिस्सो उवयरिओ कुणइ ववहारो ॥70॥

एपचारादुपचारं सत्यासत्येषु उभयार्थेषु ।
सजातीतरमिश्रेषु उपचरितः करोति व्यवहारः ॥70॥

अर्थ – सत्य, असत्य और सत्यासत्य पदार्थो में तथा स्वजातीय, विजातीय और स्वजाति-विजातीय पदार्थो में जो एक उपचार के द्वारा दूसरे

उपचार का विधान किया जाता है उसे उपचरितासद्भूत व्यवहारनय कहते है।

विशेषार्थ – पहले असद्भूत व्यवहारनय के नव भेद बतलाये हैं। यहाँ उनके अतिरिक्त तीन भेद बतलाते हैं। असद्भूत का अर्थ ही उपचार है और उसमें भी जब उपचार किया जाता है तो उसे उपचरिता-सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं।

सत्यादि उपचरित असद्भूत व्यवहार नय के दृष्टांत

देसवई देसत्थो अत्थवणिज्जो तहेव जंपंतो।
मे देसं मे दव्वं सच्चासच्चंपि उभयत्थं ॥71॥

देशपतिः देशस्थः अर्थपतिर्यः तथैव जल्पन्।
मम देशो मम द्रव्यं सत्यासत्यमपि उभयार्थम् ॥71॥

अर्थ – देश का स्वामी कहता है कि यह देश मेरा है, या देश में स्थित व्यक्ति कहता है कि देश मेरा है या व्यापारी अर्थ का व्यापार करते हुए कहता है कि मेरा धन है तो यह क्रमशः सत्य, असत्य और सत्यासत्य उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

स्वजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय

पुत्ताइबंधुवग्गं अहं च मम संपयाइ जंपंतो।
उवयारासब्भूओ सजाइदव्वेसु णायव्वो ॥72॥

पुत्रादिबंधुर्ग्गः अहं च मम सम्पदादि जल्पन्।
उपचारासद्भूतः स्वजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥72॥

अर्थ – पुत्र आदि बन्धु वर्ग रूप मैं हूँ या यह सब सम्पदा मेरी है इस प्रकार का कथन स्वजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

विशेषार्थ – 'पुत्र आदि बन्धुवर्ग रूप मैं हूँ' इसमें 'मैं' तो आत्माकी पर्याय और पुत्र आदि पर पर्याय हैं। परपर्याय और स्वपर्याय में सम्बन्ध कल्पना के आधार पर उन्हें अपने रूप मानना या अपना कहना उपचरितोपचार रूप है तथा दोनों एकजातीय होने से उसे स्वजाति-उपचरित - असद्भूतव्यवहार नय कहते हैं।

विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय

आहरणहेमरयणं वत्थादीया ममत्ति जंपंतो ।
उवयारअसब्भूओ विजादिदव्वेसु णायव्वो ॥73॥

आभरणहेमरत्नानि वस्त्रादीनि ममेति जल्पन् ।
उपचारासद्भूतो विजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥73॥

अर्थ – आभरण, सोना, रत्न और वस्त्र आदि मेरे हैं, ऐसा कथन विजाति द्रव्यों में उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है।

मार्गदर्शक :– आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेषार्थ – वस्त्र रत्न आदि विजातीय है, क्योंकि जड़ हैं। उनमें आत्मबुद्धि या ममत्वबुद्धि करना 'यह मेरे हैं' यह विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहारनय हैं।

स्वजाति विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय

देसं च रज्ज दुग्गं एवं जो चेव भणइ मम सव्वं ।
उहयत्थे उपयरिओ होई असब्भूयववहारो ॥74॥

देशश्च राज्यं दुर्गं एवं यश्चैव भणति मम सर्वम् ।
उभयार्थे उपचरितो भवत्यसद्भूतव्यवहारः ॥74॥

अर्थ – जो देश की तरह राज्य, दुर्ग, आदि अन्य मिश्र सजाति-विजाति द्रव्यों को अपना कहता है उसका यह कथन सजाति-विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है।

विशेषार्थ – देश, राज्य, दुर्ग आदि जीव और अजीवों के समुदाय रूप हैं, क्योंकि उनमें जड़ और चेतन दोनों का आवास होता है। उनको अपना कहना सजाति-विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है। चेतन सजाति है और जड़ विजाति है। अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म का अन्यत्र आरोप करना असद्भूत व्यवहार है। अतः असद्भूत व्यवहार स्वयं उपचार रूप है और उपचार का भी उपचार करना उपचरितासद्भूतव्यवहार है।

अनेकांत से तत्व सिद्धि

एयंते णिरवेक्खे णो सिज्झइ विविहभावगं दव्वं।
तं तह वयणेयंते इदि बुज्झइ सियअणेयंतं ॥75॥

एकान्ते निरपेक्षे नो सिद्ध्यति विविधभावगं द्रव्यम्।
तत्तथा वचनेऽनेकान्ते इति बुध्यत स्यादनेकान्तम् ॥75॥

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अर्थ – निरपेक्ष एकान्तवाद में अनेक भाव रुप द्रव्य की सिद्धि नहीं होती। इसी तरह एकान्त निरपेक्ष अनेकान्तवाद में भी तत्व निर्णय नहीं होता है इसलिए कथंचित् अनेकान्तवाद को जानना चाहिए।

विशेषार्थ – यद्यपि वस्तु अनेकधर्मात्मक है, किन्तु ज्ञाता अनेक धर्मात्मक वस्तु का भी अपने अभिप्राय के अनुसार किसी एक ही धर्म की प्रधानता से कथन करता है। जैसे देव दत्त किसी का पुत्र है तो किसी का पिता भी है। अतः वास्तव में न तो वह केवल पिता ही है और न केवल पुत्र ही है, तथापि अपने पिता की दृष्टि से वह पुत्र ही है और अपने पुत्र की दृष्टि से वह पिता ही है। इस तरह उसका पिता- पुत्र रूप अनेकान्त है और केवल पिता या केवल पुत्र रूप एकान्त है। इन दोनों रूपों को स्वीकार करने पर ही देवदत्त के सम्बन्धों का या धर्मो का यथार्थ ज्ञान होता है। इसी तरह एकान्त सापेक्ष अनेकान्तवाद से ही वस्तु के यथार्थ स्वरूप का बोध होता है।

कथंचित् व्यवहार नय की गौणता आनेवार्य

ववहारादो बंधो मोक्खो जह्मा सहावसंजुत्तो ।
तह्मा कर तं गउणं सहावमाराहणाकाले ॥76॥

व्यवहारात् बन्धो मोक्षो यस्मात्स्वभावसंयुक्तः ।
तस्तात्कुरु तं गौणं स्वभावमाराधनाकाले ॥76॥

अर्थ – व्यवहार से बन्ध होता है और स्वभाव में लीन होने से मोक्ष होता है इसलिए स्वभाव की आराधना के समय व्यवहार को गौण करना चाहिए।

विशेषार्थ – मोक्ष प्राप्ति के लिए जो कुछ बाह्य प्रयत्न किये जाते हैं वे सब प्रवृतिपरक होने से व्यवहार कहे जाते हैं। उस व्यवहार से यद्यपि बन्ध होता है, किन्तु उसके बिना निश्चय की प्राप्ति भी सम्भव नहीं हैं। स्वभाव में लीन होने के लिए क्रम से बाह्य प्रवृति को रोकना होता है और बाह्य प्रवृति को रोकने के लिए प्रवृति के विषयों को त्यागना होता हैं। अतः स्वभाव में लीन होने के लिए यह आवश्यक है कि हम अव्रत से व्रत की ओर आये। ज्यों-ज्यों हम स्वभाव में लीन होते जायेंगे प्रवृतिरूप व्रत, नियमादि, स्वतः छूटते जायेंगे। अतः स्वभाव की आराधना के समय व्यवहार को गौण करने का उपदेश दिया है। यदि उस समय में भी रूची व्यवहार की ओर ही रही तो स्वभाव में लीनता हो नहीं सकेगी।

नय सिद्ध योगी ही आत्मानुभवी

जह रससिद्धो वाई हेमं काऊण भुंजये भोगं ।
तह णय सिद्धो जोई अप्पा अणुहवउ अणवरयं ॥77॥

यथा रससिद्धो वैद्यौ हेम कृत्वा भुनक्ति भोगम् ।
तथा नयसिद्धो योगी आत्मानमनुभवत्वनवरतम् ।।77।।

अर्थ – जैसे रस सिद्ध वैध पारदादि के योग से स्वर्ण बनाकर भोगों का अनुभव करता है, उसी प्रकार नय सिद्ध (नय निपुण) योगी निरन्तर आत्म-अनुभव करता है।

चारित्रफल एवं उसकी वृद्धि के लिए भावनाएँ

मोक्खं च परमसोक्खं जीवे चारित्तसंजुदे दिट्ठं ।
वट्टइ तं जइवग्गे अणवरयं भावणालीणे ।।78।।

मोक्षं च परमसौख्यं जीवे चारित्रसयुते दृष्टम् ।
वर्तते तद्यतिवर्गे अनवरतं भावनालीने ।।78।।

अर्थ – चारित्र से युक्त जीव में परम सौख्य रूप मोक्ष पाया जाता है और वह चारित्र निरन्तर भावना में लीन मुनि समुदाय में पाया जाता है।

रायाइभावकम्मा मज्झ सहावा ण कम्मजा जह्मा ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ।।79।।

रागादिभावकर्माणि मम स्वभावा न कर्मजा यस्मात्।
यः संवेदनंग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ।।79।।

अर्थ – रागादि भावकर्म मेरे स्वभाव नहीं है क्योंकि वे तो कर्मजन्य है। मैं तो ज्ञाता आत्मा हूँ जो स्वसंवेदन के द्वारा जाना जाता हूँ। अर्थात् इस प्रकार भावना निरन्तर माने वाले मुनियों में चारित्र पाया जाता है।

विभाव रूप स्वभाव के अभाव की भावना

परभावादो सुण्णो संपुण्णो जो हु होइ णियभावे ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ।।80।।

परभावतः शून्यः संपूर्णो यो हि भवति निजभावे ।
यः संवेदनग्राही सोऽहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ।।80।।

अर्थ – जो परभाव से सर्वथा रहित सम्पूर्ण स्वभाव वाला है, वही मैं ज्ञाता आत्मा हूँ तथा स्वसंवेदन से जिसका ग्रहण होता है।

सामान्य गुण की प्रधानता से भावना

जडसब्भावो णहु मे जह्मा तं जाण भिण्णजडदव्वे ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ।।81।।

जडस्वभावो न मे यस्मात्तं जानीहि भिन्नजडद्रव्ये ।
यः संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ।।81।।

अर्थ – मेरा जड़ स्वभाव नहीं है क्योंकि जड़ स्वभाव तो अचेतन द्रव्य में कहा है। मैं तो वही ज्ञाता आत्मा हूँ जो स्वसंवेदन के द्वारा ग्रहण किया जाता है।

विशेषार्थ – चारित्र धारण करने के पश्चात् उसकी वृद्धि के लिए साधु को उक्त भावना करते रहना चाहिए कि मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। 'मैं हूँ' इस प्रकार के स्वसंवेदन - स्वको जानने वाले ज्ञान के द्वारा मेरा ग्रहण होता है। यह विशेषता चेतन द्रव्य के सिवाय अन्य किसी भी अचेतन द्रव्य में नहीं है। अचेतन द्रव्य न स्वयं अपने को जान सकता है और न दूसरों को जान सकता है। अचेतन द्रव्य पौद्गलिक कर्मो के संयोग से जो रागादि भाव मेरे में होते हैं, वे भी मेरे नहीं हैं, वे तो कर्म का निमित्त पाकर होते हैं। इस प्रकार का चिन्तन

करते रहने से पर में आत्मबुद्धि नहीं होती और आत्मा में ही आत्मबुद्धि होने से आत्मतल्लीनता बढ़ती है, उसी का नाम वस्तुतः चारित्र है।

विपक्षी द्रव्य के स्वभाव का अभाव रूप से भावना

मार्गदर्शक

मज्झ सहाय णाणं दरिसणं चरणं न किंपि आवरणं ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥82॥

मम स्वभावः ज्ञानं दर्शनं चरणं न किमपि आवरणम्।
यः संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥82॥

अर्थ – मेरा स्वभाव ज्ञान, दर्शन, चारित्र है कोई भी आवरण मेरा स्वभाव नहीं है। इस प्रकार मैं वही ज्ञाता आत्मा हूँ जो स्वसंवेदन के द्वारा ग्रहण किया जाता है।

स्व स्वभाव की प्रधानता से भावना

घातिचउक्कं चत्तं संपत्तो परमभावसब्भावं ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥83॥

घातिचतुष्कं त्यक्त्वा सम्प्राप्तः परमभावसद्भावम्।
यः संवदेनग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥83॥

अर्थ – घातिया चतुष्क को नष्ट करके परम पारिणामिक स्वभाव को प्राप्त मैं वही ज्ञाता आत्मा हूँ जो स्वसंवेदन के द्वारा ग्रहण किया जाता है।

निर्विकल्पक योगी आत्मानंद सम्पन्न

णियपरमणाणसंजणिय जोयिणो चारुचेयणाणंदं ।
जइया तइया कीलइ अप्पा अवियप्पभावेण ॥84॥

निजपरमज्ञानसंजनितं योगिनः चारुचेतनानन्दनम्।
यदा तदा आक्रीडति आत्मा अविकल्पभावेन ॥84॥

अर्थ - जब आत्मा निर्विकल्प भाव से परिणमन करता है तब योगी के निंज ज्ञान से उत्पन्न श्रेष्ठ आत्मानंद होता है।

नय चक्र की रचना का हेतु

लवणं व एस भणियं णयचक्कं सयलसत्थसुद्धियरं।
सम्भाविसुयं मिच्छा जीवाणं सुणयमग्गरहियाणं॥85॥

लवणमिव एतद्भणितं नयचक्रं सकलशास्त्रशुद्धिकरम्।
सम्यग्विश्रुतं मिथ्या जीवानां सुनयमार्गरहितानाम्॥85॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अर्थ - जैसे लवण सब व्यंजनों को शुद्ध कर देता है - सुस्वाद बना देता है वैसे ही समस्त शास्त्रों की शुद्धि के कर्त्ता इस नयचक्र को कहा है। सुनय के ज्ञान से रहित जीवों के लिए सम्यक् श्रुत भी मिथ्या हो जाता है।

नय चक्र ग्रंथ की उपयोगिता

जइ इच्छइ उत्तरिदुं अज्झाणमहोवहिं सुलीलाए।
तो णादुं कुणह मइं णयचक्के दुणयतिमिरमत्तण्डे॥86॥

यदि इच्छथ उत्तरितुं अज्ञानमहोदधिं सुलीलया।
तर्हि ज्ञातुं कुरुत मतिं नयचक्रे दुर्णयतिमिरमार्तण्डे॥86॥

अर्थ - यदि लीला मात्र से अज्ञान रुपी समुद्र को पार करने की इच्छा है तो दुर्नयरुपी अन्धकार के लिए सूर्य के समान नयचक्र को जानने में अपनी बुद्धि लगाओं।

इति लघुनयचक्रं देवसेनकृतं समाप्तम्।